http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग-5

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहजानन्द शास्त्रमाला

परीक्षामुख सूत्र प्रवचन

(५, ६, ७ भाग)

प्रवक्ता :—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रबन्ध सम्पादक :—
बैजनाथ जैन,
सदस्य स० शा०
यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :—
खेमचन्द जैन सर्राफ
मंत्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए रणजीतपुरी सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन ५, ६, ७ भाग

[पञ्चम भाग]

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहरजी वर्णी
श्रीमत् "सहजानन्द" महाराज]

●

ज्ञान प्रमाण द्वारा पदार्थव्यवस्था—लोकव्यवहारमें जितनी व्यवस्था हुआ हुआ करती है तथा मोक्ष मार्गके काममें भी जितनी व्यवस्था बनती है वह सब प्रमाण से बनती हैं। कोई बात प्रमाणभूत हो तो उससे व्यवस्था हुआ करती है। यदि अप्रमाण है तो उससे व्यवस्था नहीं बनती। उस ही प्रमाणका इस ग्रन्थमें स्वरूप कहा गया है। प्रमाणका स्वरूप बताया है जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण है। प्रमाणके स्वरूप वाक्योंका टुकड़ोंमें अर्थ करिये तो उल्टी ओरसे अर्थ करिये। प्रमाण क्या है? ज्ञान प्रमाण। कैसा ज्ञान प्रमाण है? निश्चय करने वाला ज्ञान प्रमाण है। किसका निश्चय करने वाला? पदार्थका निश्चय करने वाला। किस पदार्थका निश्चय करने वाला ज्ञान प्रमाण है? अपूर्व अर्थका निश्चय करने वाला ज्ञान प्रमाण है और इतना ही नहीं किन्तु खुदका भी निश्चय करने वाला ज्ञान प्रमाण है। इस प्रमाणके स्वरूपमें कितनी ही बातोंपर प्रकाश डाला गया है और इनका क्रमसे निर्णय भी किया गया है।

ज्ञानकी स्वव्यवसायात्मकता—अब इस परिभाषामें अन्तिम निर्णय दिया जा रहा है कि स्वव्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण है अर्थात् जो ज्ञान खुदका भी निश्चय किए हुए हो वह प्रमाण है। जैसे हम किसी पदार्थको जानते हैं तो पदार्थके जाननेके ही साथ साथ खुदका भी ज्ञान बनाये रहते हैं जिस ज्ञानसे जाना कि यह कमण्डल है, तो इसमें यह निर्णय भी बसा है कि यह कमण्डल है ऐसा जानने वाला जो हमारा ज्ञान है वह सत्य है। दोनों निर्णय बने हैं। अर्थात् ज्ञान खुदका भी निश्चय रखता है और जिस पदार्थको जानता है उसका भी निश्चय रखता है। इस प्रकार ज्ञानस्वपर व्यवसायात्मक होता है। जैसे दीपक दूसरे पदार्थको भी प्रकाशित करता है और खुद को भी प्रकाशित करता है। जो खुद प्रकाशरूप न हो वह दूसरेको प्रकाशित नहीं कर सकता। शायद यह कहो कि बैट्रीके बल्ब वगैरह हैं ये बैट्रीको तो प्रकाशित नहीं करते और सामनेकी चीजोंको प्रकाशित करते हैं तो दीपक वहाँ बैट्री नहीं है किन्तु प्रकाशमान जितना तार है उतना ही वह दीपक है। खुद प्रकाशमान हो तो उसके निमित्तसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्य भी प्रकाश पा सकता है। ऐसे ही जितने ज्ञान होते हैं वे सब ज्ञान खुदको भी प्रकाशित करते हैं और पदार्थोंको भी प्रकाशित करते हैं, यों ज्ञान निजका भी निर्णायक है। इतने स्थलका विवरण करनेके लिए छठवाँ सूत्र कह रहे हैं।

स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥६॥

स्वोन्मुखसे स्वव्यवसायात्मक ज्ञानकी ही परव्यवसायात्मकता—ज्ञान स्वका व्यवसायात्मक है इसका अर्थ यह है कि विज्ञानस्वरूप जो निज तत्त्व है उसका भी ग्रहण करने वाला है। जिस स्वरूपमें प्रमाणरूप माना गया है उसका सम्वेदन भी यह ज्ञान करता रहता है जाननेको ऐसी प्रक्रिया ही होती है। हम किसी भी पदार्थ को जानें तो उसमें दो पद्धति होती हैं। ये पदार्थ जाने गए सो ठीक है और इस पदार्थ को इस ज्ञानमेंसे जाना, यह ज्ञान भी बिल्कुल ठीक है। पदार्थको जानने वाला ज्ञान यदि अप्रमाण मान लिया जाय तो पदार्थका भी ज्ञान प्रमाण नहीं होता। यह बात खुदकी कही जा रही है। हम आप सब आत्मा हैं, व ज्ञायकस्वरूप हैं। यह ज्ञान किस तरहसे अपना काम करता है उसकी बात कही जा रही है। यह ज्ञान स्वका निर्णय करता हुआ और परका भी निश्चय करता हुआ ज्ञान करता रहता है अर्थात् यह ज्ञान खुदका भी निर्णय रखता है, ऐसा नहीं है कि अपने ज्ञानको सही समझनेके लिए हम कुछ और ज्ञान पैदा करते हों और उससे फिर जानते हों कि यह मेरा ज्ञान सही है। ज्ञानकी प्रमाणता समझनेके लिए दूसरे ज्ञानकी जरूरत नहीं है। यदि वह ज्ञान वास्तवमें पदार्थका सही ज्ञान कर रहा है तो वह ज्ञान खुद अपने आप अपनेको सही बतला देता है। इस ही बातको एक दृष्टान्त द्वारा बतलाते हैं।

अर्थस्येदं तदुन्मुखतयेति

ज्ञानकी स्वोन्मुखताका उदाहरण द्वारा समर्थन–इसमें एक उदाहरण बताया है कि जैसे हम पदार्थको जानते हैं तो ज्ञान पदार्थकी तरफ उन्मुख होता है तब जानते हैं ना यह चौकी है आदि आदि। यह ज्ञान जिस जिस पदार्थको जानता रहता है वह उस पदार्थकी ओर उन्मुख सा होने लगता है। जैसे अपने सामने चीज है तो उसका ज्ञान हो रहा है, और इससे विमुख हो जाय, बगलकी चीजका ज्ञान करने लगे तो हमारे ज्ञानमें एक दूसरे पदार्थकी उन्मुखता आ जायगी। जिस पदार्थकी तरफ लग लगकर पदार्थका जानना बन रहा। इसीं तरह यह परख लें कि हम यह समझनेका जब प्रयास करते हैं कि मेरा ज्ञान क्या सही है तो हम इस ज्ञानकी ओर लगकर ज्ञानको जानते हैं। जैसे किसी दूरदर्शी पदार्थको हमने जाना आगे सीप पड़ी थी बहुत दूर और समझ लिया कि यह सीप है तो उस समय हमारी उन्मुखता उस तत्त्वकी ओर है, और जब हम यह समझने बैठते हैं कि जान तो लिया कि यह सीप है मगर क्या कुछ यह ज्ञान सच है ? तो उस निर्णयके प्रसङ्गमें हम अपना दिमाग अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रदेशोंकी ओर झुकाते हैं उस ज्ञानको सही माननेके लिये। जैसे सब हम कोई चीज बोल रहे हैं भजन वगैरह और बीचमें कोई छंद भूल गया तो उसका स्मरण करनेके लिए हम क्या कहीं बाहर आँखें गड़ाया करते हैं ? कुछ अपनी ओर झुककर सोचा करते हैं कि क्या है वह छंद। अपना ज्ञान प्रकट करनेके लिए हम अपनी ओर झुका करते हैं। तो ज्ञानमें ऐसी सामर्थ्य है कि वह परको भी जाने और स्वको भी जाने। जैसे घटपट आदिक बाह्य पदार्थोंकी ओर उन्मुख होकर उनका प्रतिभास होता है इसी प्रकार जाननेवाले ज्ञानकी ओर लगकर उन्मुख होकर उस ज्ञानका भी प्रकाश होता है।

स्वपर प्रकाशकताके विरुद्ध अचेतन ज्ञानका एक सिद्धान्त— जैसे दीपक ऐसा प्रकाश स्वरूप है कि खुदका भी प्रकाशक है और बाहरी चीजोंका भी प्रकाशक है, इसी प्रकार यह ज्ञान भी खुदका प्रकाशक है और बाहर पदार्थोंका भी प्रकाशक है, आप लोग शायद यह सोचते होंगे कि ऐसे ज्ञानके बारेमें जोर इसपर दिया जा रहा है कि यह ज्ञान परका प्रकाशक है और स्वका भी प्रकाशक है। क्या कोई लोग ऐसे भी है जो ऐसा मानते हों कि ज्ञान स्वका प्रकाशक नहीं, केवल बाहरी पदार्थोंका ही जानने वाला है। हाँ है ऐसा सिद्धान्त और इतना ही नहीं, कुछ सिद्धान्त तो इसका भी उल्लंघन करके आगे बढ़ेंगे जो यह कहते हैं कि ज्ञान तो अचेतन है। ज्ञानमें चेतना ही नहीं है। तो यहाँ यह बता दिया कि ज्ञान कुछ प्रकाशित ही नहीं होता। जैसे आज कलके भूगोल वाले कहते हैं कि चन्द्रमामें प्रकाश है ही नहीं। सूर्यकी रोशनी पड़ती है तो चन्द्र प्रकाशित होता है। ऐसे ही कुछ सिद्धान्त यों मानते हैं कि ज्ञान अचेतन हैं उसमें प्रकाश करनेका काम है ही नहीं। तो जैसे चन्द्र स्वयं प्रकाशरूप न होकर सूर्यका सान्निध्य पाकर प्रकाशमान होता है ऐसा आजकलके भूगोलवादी मानते हैं ऐसे ही कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं कि ज्ञान स्वयं चेतने वाला नहीं है किन्तु यह ज्ञान चैतन्यस्वरूप आत्मा का सन्निधान पाकर चेतनेका काम किया करता हे।

अपने ज्ञानस्वरूपकी चर्चा—देखिये अपने आपकी चर्चा कुछ कठिन लग रही है क्या ? जो खुद ज्ञान स्वरूप है, जो जगतकी सारी व्यवस्था बनाता है, बड़े बड़े आविष्कार भी करलें उस ही ज्ञानकी बात चल रही है। वह ज्ञान क्रियात्मक है तो जानने वाला भी ज्ञान है और जानने वालेकी ही चर्चा की जा रही है तो वह कठिन तो न लगना चाहिये,लेकिन ऐसे भी सुगम ज्ञानस्वरूप निजतत्त्वकी चर्चा कठिन लगा करती है तब हमारी वासना हमारा हृदय एक बाह्य पदार्थकी आकांक्षावों और तृष्णावोंमें लग रहा हो। कारण उसका यह है कि एक उन्मुखता का अन्तर है जानने वाला तो है यह ज्ञान। यह अपनी ओर मुह करके जाने तो इस ज्ञानसे सब कुछ अन्तर्मर्म जाना जा सकता है। और जब परकी ओर मुह करके यह ज्ञान जाने तो खुदका कुछ ज्ञान नहीं रह पाता। केवल बाहरी-बाहरी पदार्थोंको ही खण्ड खण्ड रूप कुछ कुछको समझते रहते हैं। हां ज्ञानी पुरुष जरूर ऐसे होते हैं कि बाह्य पदार्थोंको जान-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर भी अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी प्रतीति बराबर रखा करते हैं। तो यह इस ज्ञान की ही चर्चा चल रही है।

प्रकृतिसे ज्ञानकी व्यक्तताका सिद्धान्त—कुछ सिद्धान्त ऐसा कहते कि आत्मामें तो ज्ञानस्वरूप है ही नहीं। आत्मा तो सिर्फ चैतन्यमात्र है। उस चैतन्यमात्र आत्मामें जब ज्ञानका सम्बन्ध जुड़ता है तब यह आत्मा जानता है। उनसे फिर पूछा जाय कि जिस ज्ञानका सम्बन्ध आत्मामें जुड़ा वह ज्ञान किसकी चीज है? कहाँसे आया है किस तरह जुड़ गया है? तो उनका उत्तर है कि वह ज्ञान प्रकृतिका धर्म है, प्रधानका धर्म है और वह आत्मामें जुड़ा है।—इसको बहुत जल्दी समझना हो तो यों समझ लीजिए कि प्रकृति अर्थात् प्रधानको मान लीजिये कर्म। उनका कथन इस तरह बन बैठेगा कि ज्ञान कर्मका धर्म है और जब यह कर्मका धर्म ज्ञान चैतन्यस्वरूप आत्मामें लगता है तो यह जानने लगता है इसमें प्रकाश उत्पन्न हो जाता है ऐसे भी कुछ सिद्धान्त हैं। अतएव यह बात जोर करके कहनी पड़ी कि ज्ञान स्वका भी निश्चय करने वाला है और परका भी निश्चय करने वाला है।

ज्ञानकी अस्वव्यवसायात्मकताका पूर्व पक्ष—आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। इसपर परमतवादी कहते हैं कि वह ज्ञान स्वव्यवसायात्मक कैसे है? ज्ञान स्वका निश्चय नहीं कर सकता क्योंकि वह अचेतन है। जैसे ये घट पट चौकी चटाई आदि खुद अपना निश्चय कर सकते हैं क्या? नहीं करते क्योंकि ये अचेतन हैं इसी प्रकार यह ज्ञान भी अचेतन है। अतएव अपना निर्णय नहीं कर सकता और यह ज्ञान अचेतन क्यों है? यों है कि यह प्रकृतिकी पर्याय है, प्रधानकी पर्याय है। तो जितनी प्रकृतिकी पर्यायें हैं रागद्वेष इन्द्रिय शरीर जैसे ये अचेतन हैं इसी प्रकार प्रकृतिकी पर्याय ज्ञान है वह भी अचेतन है। जो चेतन होता है वह प्रकृतिकी पर्याय नहीं होती। इस सिद्धान्त में दो मूल तत्त्व माने हैं—आत्मा और प्रकृति। प्रकृतिसे तो मायाकी उत्पत्ति है और आत्मासे परमार्थ सत् होता है ऐसा उनका सिद्धान्त है। तो ज्ञान हो अथवा अहंकार हो, रागद्वेष आदिक हों, इन्द्रियका उद्भव हो, शरीर हो ये सब प्रकृतिके स्वरूप माने हैं इस सिद्धान्तमें, और आत्मा केवल चैतन्यस्वरूपमात्र है। वह ज्ञान भी नहीं करता किन्तु अपने स्वरूपको चेतता रहता है ऐसा एक दर्शन है।

अचेतनज्ञानवादकी अयुक्तता—अचेतनज्ञानवादके निराकरणके लिए यह कहा जा रहा है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आत्माकी ही ज्ञान पर्याय है। ज्ञानप्रधानकी पर्याय सिद्ध नहीं हो सकती। प्रधान या प्रकृति कहो दोनोंका एक अर्थ है। आत्मा ज्ञान पर्याय वाला है क्योंकि दृष्टा होनेसे। देखिये ज्ञानको अचेतन मानने वालेने आत्माको द्रष्टा माना है, ज्ञाता नहीं माना है द्रष्टामें भिन्न भिन्न प्रकारका बोध नहीं होता किन्तु केवल अपने स्वरूपका प्रतिभास होता है। जैसा कि दर्शनका स्वरूप जैन सिद्धान्तने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

माना। भगवान अरहंतदेव केवल ज्ञानके द्वारा तीन लोक और अलोकके समस्त पदार्थोंको जानते रहते हैं और केवल दर्शनके द्वारा क्या किया करते हैं ? सारे विश्व को जानने वाले निजके आत्माका चेतन करते रहते हैं। दर्शनके द्वारा केवल अपने स्वरूपका संचेतन करते है। अपने स्वरूपका प्रतिभास करना दर्शनका काम है। पर जैन दर्शनमें तो ज्ञान और दर्शन दोनों ही आत्माके स्वरूप हैं। किन्तु अचेतन ज्ञान-वादियोंने आत्माका स्वरूप दर्शन तो माना है पर ज्ञान नहीं माना। तो उनके प्रति कह रहे हैं कि आत्मा ज्ञान पर्याय वाला है क्योंकि आत्मा द्रष्टा है। जो द्रष्टा नहीं होता उसमें ज्ञान पर्याय भी नहीं होती। जिसके ज्ञान पर्याय नहीं होती वह द्रष्टा भी नहीं होता। जैसे ये घट पट आदिक इनमें जानना नहीं है तो ये अपने स्वरूपका भी चेतन नहीं कर सकते। ये अचेतन पदार्थ पड़े हैं। अपनी नई अवस्था बनाते हैं पुरानी अव-स्था छोड़ते हैं। और, खुद बने रहते हैं उपादव्यय ध्रौव्यात्मक सब पदार्थ हैं।

पदार्थकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकतासे हितव्यवसथा--जैन दर्शनमें एक सूत्र ऐसा है कि जो अन्तर और बाह्य व्यवस्था बनाये। उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्। समस्त सत् पदार्थोंका स्वरूप बता दिया। जो उत्पादव्यय ध्रौव्य स्वरूप हो वह है पदार्थ। कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसमें उत्पादव्यय और ध्रौव्य न पाया जाय। देखो यह जो बात कही जा रही है यह सब आत्मकल्याणके उपायभूत बात है। जब यह जान पायेंगे कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपकी नई अवस्था बनाते हैं और अपनी पुरानी अवस्था विलीन करते हैं और वे खुद शाश्वत बने रहते हैं। यही बात सभी पदार्थोंकी है। ऐसे ही हम हैं, ऐसे ही प्रत्येक परमाणु है। सभी अपनी नई अवस्था बनाते हैं और पुरानी अवस्था विलीन करते हैं। कोई दूसरा नहीं बनाता, वे खुद अपने आपरूप परिणमते हैं। ऐसी ही हमारी बात है। कुछ भी निरन्तर अपने आपमें अपना परि-णमन बनाते हैं पुराना परिणमन विलीन करते हैं और हम शाश्वत अपने स्वरूपरूप बने रहते हैं ऐसे ही सब पदार्थोंको निरखते जाइये तो क्या प्रभाव डालेगा ? यह प्रभाव होगा कि मोह न रहेगा क्योंकि जब यह निरखनेमें आयगा कि किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थपर रंच भी अधिकार नहीं है। अधिकार तो तब माना जाय जब कोई पदार्थ किसी पदार्थको कुछ करदे। पर सभी पदार्थ जब अपने आपमें उत्पादव्यय ध्रौव्य किया करते हैं तो किसका कौन लगेगा ? जिस घरमें आप बसते हैं वह घर कुछ नहीं लगता। जिस कुटुम्बमें आप रहा करते हैं मोहवश आप सुख मानते हैं उस कुटुम्बका कोई आपका कुछ नहीं लगता। और तो जाने दो जिस देहमें आप रात दिन बसा करते हैं जिससे अलग होकर आप थोड़ा भी बाहर नहीं सरक सकते यह देह भी आपका कुछ नहीं लगता। आखिर इस भारको ढोये जा रहे हैं फिर भी यह देह हमारा कुछ नहीं लगता। मैं अमूर्त ज्ञानवान आत्मपदार्थ हूँ और यह देह ये पुद्गल परमाणुवोंके स्कंध मांस रुधिर मल मूत्र चर्म आदि इनमें रंच भी प्रतिभासका काम नहीं है और यह मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रतिभास हूँ। जब पदार्थोंका यह विज्ञान बनता

है कि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्य स्वरूप है तो कर्तव्य नहीं रहता, स्वामित्व नहीं रहता, मोह दूर होता है।

ज्ञानके एकत्वपरिणमनसे शान्तिलाभ—देखिये ! भीतरमें ऐसा सम्यग्ज्ञान बननेपर मोह तुरन्त दूर होता है। चाहे कुछ समय तक थोड़ा-बहुत राग रहे लेकिन मोह नहीं रहता और मोह न रहना सो ही धर्म है, मोक्षका मार्ग है। दूसरा सूत्र बताया है—'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।' सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्माका सहज स्वरूप विश्वास और सम्यग्ज्ञान ऐसे ही आत्मतत्त्वका ज्ञान और ऐसा ही अपने स्वरूपमें रम जाना निर्विकल्प एकरस होकर केवल ज्ञानानुभवमात्र यह है सम्यक् चारित्र। इन तीनका एकत्व मोक्षका उपाय है। आनन्द तो इस मोक्ष अवस्थामें ही है। पर पदार्थोंका जितना लगाव है उतना ही क्लेश विकल्प और आकुलताएँ मिलेंगी, वहां उसे शान्ति नहीं मिल सकती।

अचेतनवादी अपना पक्ष यह रख रहे हैं कि ज्ञान अचेतन होता है अतः ज्ञान अपने आपको चेतता नहीं है। ज्ञान है प्रकृतिका धर्म और जब आत्मामें संसर्ग होता है तब ज्ञान बाह्य पदार्थोंको जानता है, इतनेपर भी ज्ञान अपने आपको प्रतिभासित नहीं करता। उसके उत्तरमें कहा जा रहा है कि ज्ञानपर्याय प्रधान की नहीं है, प्रकृतिकी नहीं है किन्तु आत्माकी पर्याय है क्योंकि यह द्रष्टा है, जिसमें ज्ञान पर्याय न हो वह द्रष्टा भी नहीं बनता। जैसे सामने दिखने वाले ये सभी पदार्थ जिनमें ज्ञान नहीं है तो ये अपने आपका भी चेतन नहीं कर सकते सो परका ज्ञान भी नहीं कर सकते। ज्ञान आत्माका धर्म है। यदि ज्ञानको प्रकृतिका धर्म माना जाय तो प्रकृति ही द्रष्टा बन जाय, ज्ञाता तो प्रकृति हो ही गया, द्रष्टा भी प्रकृति हो जाय उससे फिर आत्माकी कल्पना ही क्यों करते ? अब तो प्रकृति ही ज्ञाता है और प्रकृति ही द्रष्टा है।

यदि यह कहो कि आत्मामें ऐसा अनुभव होता है कि मैं चेतन हूँ इस कारण आत्मामें चैतन्य स्वभाव पाया जाता है। उसको कहाँ मना कर दें ? भाई ! इसी तरह आत्मामें यह भी अनुभव होता है कि मैं जाननहार हूँ, ज्ञाता हूँ। तो ज्ञानस्वभाव भी आत्मामें मान लें। आत्मामें जैसे चैतन्यस्वभाव माना गया है, इसी प्रकार ज्ञान-स्वभाव भी मान लिया जाना चाहिए। शायद यह कहो कि आत्मामें जो यह प्रतिभास होता है कि मैं ज्ञाता हूं, जाननहार हूँ वह तो ज्ञानके संसर्गसे होता है, आत्मा ज्ञान-स्वभावी नहीं है। आत्मा यह समझता हो कि मैं ज्ञाता हूँ ऐसा नहीं है ऐसा पूर्वपक्षमें कहा जा रहा है। आत्मा जाननहार होनेमें ऐसा जो प्रतिभास करता है वह ज्ञानके सम्बन्धसे करता है। पर आत्मामें ज्ञानका स्वभाव नहीं है।

अब आचार्य समाधान करते हैं कि ज्ञानको अचेतनता कहना भी उचित नहीं है क्योंकि यों तो हम चेतनमें भी कह देंगे कि आत्मा जो यह अनुभव करता है कि मैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चेतन हूँ, द्रष्टा हूँ, अपने आपका अनुभव करने वाला हूँ, अपने आपका प्रतिभास करता हूँ तो वह चैतन्यके सम्बन्धसे हो रहा है। कहीं आत्मामें चैतन्य स्वभाव नहीं पड़ा है। यों हम चेतनके बारेमें भी कह सकते हैं और यों तो सभी बातें यों थोथी लाई जा सकती हैं। आत्मा पदार्थ चैतन्यके सम्बन्धसे चेतन है, स्वयं चेतन नहीं है यों कह बैठेगा कोई। भोक्ताके सम्बन्धसे भोक्ता है, स्वयं भोक्ता नहीं। उदासीनताके सम्बन्धसे उदासीन है, आत्मा खुद उदासीन नहीं है। शुद्धिके सम्बन्धसे आत्मा शुद्ध है, खुद शुद्ध नहीं। यों तो हम हजार बातें और लगा सकते हैं पर ये सही तो नहीं हैं। इसमें तो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे बाधा आती है।

आत्मा ज्ञानवान है और द्रष्टा भी है, ज्ञाता और द्रष्टामें यह अन्तर समझिये कि ज्ञातामें तो पदार्थका जानन होता है, ज्ञेयाकार ग्रहण होता है, निर्णय होता है और द्रष्टापनमें यह केवल अपने आत्माको चेतता रहता है। यदि आत्मा द्रष्टा नहीं होता तो ज्ञाता नहीं हो सकता क्योंकि जो अपने आपको नहीं चेत सकता वह बाह्य पदार्थोंको भी नहीं जान सकता। तो चैतन्यस्वभाव है आत्माका। और उस चैतन्यकी ये दो विशेषताएँ हैं कि वह जाने और दर्शन करे। ज्ञान और दर्शन ये चेतन की विशेषताएँ हैं। इस जीवने बाहरमें तो जाननेका प्रयत्न किया, यह घर है, दूकान है, वैभव है, परिजन हैं आदिक प्रयत्न यह अनादिसे कर रहा है। चाहे रहता कुछ नहीं इसके पास। पूर्वभावमें जो कुछ भी समागम इसे प्राप्त थे वे आज कहाँ हैं ? कुछ भी तो पता नहीं है। इस भवके बाद तो सभी जानते हैं कि साथ कुछ भी नहीं जाता है लेकिन मोहकी ऐसी तीव्र प्रेरणा है इतना गहन अन्धकार है कि बाहरी बाहरी बातों में तो चित्त लगा रहता है पर अपने आपके स्वरूपके जाननमें चित्त नहीं लगता।

यह चर्चा किन्हींको बड़ी कठिन प्रतीत होती होगी। बात समझमें नहीं आती, किसकी बात ? अपनी खुदकी। खुदकी बात जो कुछ ज्ञानस्वरूप है उसकी बात समझ में नहीं आती और जिसकी बात कभी समझी ही नहीं जा सकती वे सब बातें समझमें आती हैं। ये बाहरी पदार्थ, ये बाह्य वैभव जो कि अत्यन्त भिन्न हैं, आत्मासे जिनका कुछ सम्बन्ध नहीं इसकी बात तो समझमें आ जाय और खुद क्या है, क्या स्वरूप है, शरीरके अन्दर रहने वाला यह मैं आत्मा कैसा हूँ इसमें क्या शक्तियाँ हैं, इसमें क्या गुण हैं, यह कुछ बात समझमें न आये तो यह हमारे लिये खेदकी बात है।

इन बाहरी वैभवोंमें शिर मानकर कौन सा लाभ मिलेगा ? केवल कल्पनासे यही तो मान लिया कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरा अमुक है, यह मेरा वैभव है, इसीसे ये सारे क्लेश बने हैं। ये सभी हैं अत्यन्त भिन्न पदार्थ। ये घरमें जो चार जीव आकर इकट्ठे हो गए हैं ये लगते किसीके कुछ नहीं हैं पर मोहकी बात ऐसी पड़ी है कि उन्हीं को अपना सर्वस्व समझते हैं। इस संसारमें सार कुछ नहीं है। यदि सार होता तो

तीर्थंङ्कर जैसे महापुरुष क्यों इनको त्यागकर आत्म-समाधिके लिए यत्न करते ? बहुत बड़ी समस्या है आज यह कि हम क्या कर रहे हैं। जिससे हमारा भला हो, कल्याण हो, शेष भावी जीवन हमारा शान्तिपूर्वक व्यतीत हो ऐसा क्या कार्य करना है ? यह बहुत बड़ी समस्या है सामने, पर मोही जीव इसे समस्या ही नहीं मानते। बहुत बड़ी बात सामने हैं। यह मनुष्य तो हो गये। बचपन निकल गया, जवानी निकल रही है अथवा निकल गयी, शेष थोड़ा जीवन शेष रह गया, उस जीवनमें भी यह चित्त वशमें न रहे, तृष्णामें लगा जा रहा हो और ऐसी तृष्णा बनी हुई हो कि विवेक अविवेक न्याय अन्याय कुछ भी नहीं सोचा जाता है तो इस सबका फल क्या होगा ? किसलिये ऐसा सब किया जा रहा है, कोई साथी न होगा। खुदके लिए का फल खुदको ही भोगना होगा ?

यहाँ निज ज्ञान स्वभावकी बात चल रही है। अपने आपको पहिचाने। यह मैं आत्मा चैतन्य स्वरूप हूँ ऐसा एक विलक्षण पदार्थ हूँ मैं कि इसका कार्य चेतनेका है, प्रतिभास करनेका है। यह कार्य अन्य किसी पदार्थमें नहीं है। यह पुद्गल है, आकाश है, धर्मद्रव्य है, अधर्मद्रव्य है, काल द्रव्य है, इनमें किसीमें भी यह कला नहीं है कि वह चेत सके, अनुभवन कर सके, ज्ञान कर सके। केवल यह पवित्रता आत्मामें ही है। आत्मा ज्ञान स्वभावी है और ज्ञानके परिणमन चलते रहते हैं। ज्ञान स्वभाव से रहित यह आत्मा कभी समझमें नहीं आ सकता। प्रत्येकका ज्ञानरूप ही अपना आत्मा अनुभवमें आता है इस कारण यह मानो कि ज्ञान जैसे पर पदार्थका निर्णय करता है इसी प्रकार ज्ञान अपने सबके स्वरूपका भी निर्णय करने वाला होता है। जो ज्ञान अपने आपके स्वरूपकी पक्कायत न करे वह बाह्य पदार्थोंकी भी पक्कायत नहीं कर सकता।

क्या कोई ज्ञान अन्तरमें तो ऐसा सोचे कि मैंने जो चौकीका ज्ञान किया यह ज्ञान मेरा सही है कि नहीं। यहाँ तो रखा सन्देह और यहाँ बताये निर्णय कि यह चौकी ही है। ये दो बातें तो नहीं बन सकती। अगर ज्ञानमें सन्देह है तो बाह्य पदार्थों में भी निर्णय नहीं बन सकता। हमने कोई पदार्थ जाना कि यह चाँदी है और यह भी सोचते जायें कि मैं जो यह जान रहा हूँ कि यह चांदी है क्या यह मेरा ज्ञान सच्चा है ? कहीं और कुछ तो नहीं है, और मैं चाँदी जान रहा होऊँ, मेरा ज्ञान क्या सत्य है ? इसी तरह ज्ञानके स्वरूपमें तो हम सन्देह रखें और बाहरमें यह बतायें कि वह चाँदी ही है यह तो ठीक नहीं बैठता। खुद ठीक बैठेगा तो बाहरी पदार्थोंका ज्ञान ठीक बैठेगा और खुदमें डावाडोल रहेगा तो बाहरी पदार्थोंका भी निर्णय नहीं होता। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ और अपने आपका भी ज्ञान करता हूँ बाह्य पदार्थोंका भी ज्ञान करता हूँ। वह ज्ञान प्रकृतिका धर्म नहीं है।

पूर्वपक्षकारके पक्षका विवरण—पूर्वपक्षकारका विवरण समझनेके लिये

http://www.jainkosh.org

थोड़ी देरको ऐसा मान लें कि वही लोग ऐसा कह रहे हैं कि ज्ञान है कर्मका धर्म और आत्माका धर्म है दर्शन अथवा चैतन्य। और, कर्मके धर्मका जब आत्मामें सम्बंध होता है तब यह आत्मा ज्ञानी बनता है। यों कह रहे हैं वे पूर्वपक्षवादी। ऐसा कहनेमें उन्होंने आधार क्या पाया? थोड़ा बहुत गलत हो गया मगर किसी भी गल्तीका कोई न कोई तत्त्वका आधार होता है, ऐसी कोई गल्ती नहीं है जिसका आधार कुछ भी न हो और मूलसे गलत ही गलत हो, ऐसी गल्तियाँ नहीं हुआ करती। तो अचेतन ज्ञान वादियोंने ऐसा कौन सा आधार पाया जिससे वे यह कहने लगे कि आत्मा ज्ञानस्वरूप नहीं है, ज्ञानस्वरूप तो प्रधान है अर्थात् प्रकृति है कर्म है, कुदरत है और उस ज्ञानका जब आत्मामें सम्बन्ध होता है तब वह ज्ञानी बनता है। उनके इस प्रकारके कहनेका आधार है क्षायोपशमिक ज्ञान, अर्थात् जो ये हम आप सबके ज्ञान हो रहे हैं—आँखोंसे अन्य इन्द्रियसे, ये सब ज्ञात होते हैं नष्ट हो जाते हैं और साथ ही ऐसा जानना हमारा स्वभाव भी नहीं है। यह तो कर्मोंके क्षयोपशमसे ऐसा होता है। जितना ज्ञानावरण कर्मोंका क्षयोपशम है जिसमें उदय भी लगा हुआ है उतना ज्ञान हो रहा है। तो यह ज्ञान कर्मजनित है अतएव कर्मका धर्म ज्ञान मान लिया, प्रकृतिका धर्म ज्ञान समझ लिया और आत्माको केवल स्वरूप देखा ज्ञानरहित, इसके माननेका भी वहाँ आधार यह है कि जब आत्मा शुद्ध होता है अथवा अपने स्वरूपमें जैसा है वैसा बताया जाय तो वहाँ कोई विकल्प नहीं है। वहाँ कोई यों खण्ड ज्ञान नहीं है, ये ज्ञानकी विशेषताएँ नहीं हैं, वह केवल अपने आपमें आत्ममग्न है तो यह स्थिति है दर्शनकी। आत्मा चैतन्यस्वरूप तो मान लिया गया किन्तु ज्ञानी नहीं माना। ज्ञान प्रकृतिका धर्म माना गया है, उसी सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर चल रहे हैं।

ज्ञानकी अनित्यतासे आत्माकी अनित्यतपर शंका समाधान—यहाँ पूर्वपक्षकार यह आपत्ति देता है कि यदि आत्माको ज्ञानस्वभावी मानते हों तो आत्मा अनित्य बन जायगा क्योंकि ज्ञान सारे अनित्य हैं। अभी चटाई जाना थोड़ी देरमें यह ज्ञान मिट जायगा फिर कुछ जाना वह ज्ञान मिट जाता है। तो ये मिट जाने वाले ज्ञान यदि आत्माके स्वभाव मान बैठोगे तो आत्मा मिट जायगा, आत्मा अनित्य हो जायगा इस कारण आत्माको ज्ञानस्वभाव मत मानो। ऐसा यदि तुम्हारा ख्याल है तो यह ख्याल तो प्रधानमें भी लगा सकते। प्रकृतिमें भी हम ज्ञानस्वभावी मत मानें। प्रकृति का भी धर्म ज्ञान मत मानें क्योंकि ज्ञान है नित्य तो तुम्हारी प्रकृति भी नित्य बन जायगी, सो प्रधानको भी ये लोग अनित्य नहीं मानते। जीव और अजीव इनकी जगहमें उनके शब्द हैं आत्मा और प्रकृति। प्रकृतिका धर्म ज्ञान मानोगे तो प्रकृति अनित्य बन बैठेगा।

व्यक्ताव्यक्तरूपसे नित्यानित्यत्वकी सिद्धिका यत्न शायद यह कहो कि प्रकृतिमें दो बातें हैं—अंत: और बाह्य, शक्ति और व्यक्ति, सूक्ष्म और स्थूल। तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकृतिका जो अन्तः स्वभाव है वह तो अव्यक्त है और यह जो ज्ञान परिणमन है वह व्यक्त है। व्यक्त तो अनित्य है वह प्रकृतिका परिणमन है इस कारण प्रकृतिमें दोष नहीं लिया जा सकता। प्रकृतिका स्वभाव ज्ञान है और उस ज्ञानका जो व्यक्तरूप है वह अनित्य है और जो शक्ति है, अव्यक्तरूप है, स्वभाव है, स्वरूप है वह नित्य ही रहेगा इस कारण प्रकृतिमें दोष नहीं बैंठता। तो यह बात आत्मामें मान लो। आचार्य देव कह रहे हैं कि आत्मा ज्ञायक स्वभावी है और इसका जो परिणमन है भिन्न-भिन्न पदार्थोंका जो ज्ञान बनता है वह अनित्य है पर ज्ञानस्वभावी आत्मा नित्य है, परिणमन अनित्य है। इसमें भी कौन सा दोष आता है। यदि यह कहो कि आत्मासे ज्ञान अभिन्न है तो यह आत्मा क्षणभंगुर हो जायगा तो यह बात प्रधानमें भी लगा लो। प्रधानसे तो यह ज्ञान परिणमन अभिन्न है इस प्रकारसे प्रधान भी अनित्य हो जायगा।

द्रव्यपर्यायरूपतासे नित्यानित्यत्वकी सिद्धि तो सीधी सी बात है आत्मा एक द्रव्य है उसका ज्ञान गुण है। जैसे आत्मा अनादि अनन्त है वैसे ही यह ज्ञानस्वभाव भी अनादि अनन्त है। वर्तमान कालमें जब तक यह जीव संसारी है तब तक ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके अनुसार थोड़ा-थोड़ा ज्ञान चल रहा है और जब ज्ञान आवरण कर्मका सर्वथा अभाव हो जायगा तब आत्मा पूर्ण ज्ञानस्वभावमें विकसित हो जायगा। जो छुटपुट ज्ञान हैं वे उद्दण्डता मचाते हैं। हम अपना ऊधम तरङ्ग उठाते हैं, पर जो स्वाभाविक ज्ञान है, विशाल ज्ञान है, समस्त विश्वका बोध है वह ज्ञान निस्तरङ्ग रहकर गम्भीर धीर और व्यापक हो जाता है। तो तुम इस सांसारिक छुटपुट ज्ञानको दृष्टिमें लेकर ऐसा कह रहे हो। यह ज्ञान अनित्य है तो आत्मा भी अनित्य बन जायगा आत्मा ज्ञायकस्वरूप हैं।

दृष्टान्तपूर्वक ज्ञानकी स्वपरप्रकाशात्मकतासे सम्बद्ध कुछ विशेष रहस्य—जैसे दीपक स्वयं प्रकाश स्वरूप है उसको ढूंढनेके लिए अन्य दीपककी आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं स्वपर प्रकाशक है। इसी प्रकार यह आत्मा भी स्वयं ज्ञानस्वरूप है, वह अपने आपको भी जानता रहता है और पर पदार्थोंको भी जानता रहता है। जैसे दीपक तो अपनी जगहपर रखा हुआ प्रकाशित होता रहता है, दीपक अन्य पदार्थोंको प्रकाशित करने नहीं जाता, अन्य पदार्थ भी उस दीपकका निमित्त प्रकाशित हो जाते हैं। ऐसे ही समझ लो यह आत्मा स्वयं प्रकाशमान है और इन पदार्थोंमें ऐसा स्वरूप है कि ये पदार्थ अपने स्वरूपसे प्रकाशित हो जाते हैं। यों दीपक का और पदार्थका जैसे परस्पर प्रकाशक प्रकाश्य भाव सम्बन्ध है इसी प्रकार इस ज्ञानका समस्त पदार्थोंके साथ ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है। न ये पदार्थ मुझपर कोई जबरदस्ती करते हैं कि हम खाली बैठे हैं तुम हमें जानों, तुम हमें क्यों नहीं जानते, क्यों नहीं देखते, क्यों नहीं छूते ? कोई पदार्थ हमपर जबरदस्ती नहीं करता और हम भी अपने प्रदेशोंसे बाहर निकलकर मोटे रूपमें यों समझो कि शरीरसे बाहर न होकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थोंके पास जा जाकर इन पदार्थोंको नहीं जानते, किन्तु ज्ञानका और इन पदार्थों का ऐसा ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है कि ये पदार्थ स्वयं ज्ञानमें आते हैं और यह ज्ञान स्वयं पदार्थका प्रतिभास करता है। ऐसा यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है और इस ज्ञानका स्वरूप स्वपर व्यवसायी है, अपने आपका भी निर्णय करता है और परपदार्थोंका भी निर्णय करता है। प्रकृतिका धर्म नहीं है ज्ञान। ज्ञान आत्माका स्वभाव है।

व्यक्त परिणमनकी व्यवस्था—जो अचेतन ज्ञानवादी यह कहते हैं कि प्रकृतिका व्यक्त रूप है ज्ञान और अव्यक्त रूप है वह खुद प्रकृति स्वरूप। तो व्यक्त और अव्यक्त ये यद्यपि अभेद है फिर भी जो व्यक्त है परिणमन है, प्रकृति है स्थूल है वह ही अनित्य होता है क्योंकि वह परिणमनरूप है। अव्यक्त अनित्य नहीं होता। यही बात आत्मामें भी लगा लें। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। और यह ज्ञान हो रहा है व्यक्त और आत्मस्वरूप है अव्यक्त तो इस ज्ञानका और आत्माका यद्यपि अभेद है तो भी व्यक्त ज्ञान ही अनित्य रहता है क्योंकि ज्ञान आत्माका विशेष परिणमन है। आत्मा अपरिणामी है। यहाँ भी वही बात घट जाती है।

सिद्धान्तोंमें द्रव्य गुण पर्यायात्मकताकी झांकी—देखिये कितना भी जब वस्तुत्वका विवेचन किया जाय तो जो सही पद्धति है उसका सम्बन्ध सबको लेना पड़ा प्रत्येक पदार्थ द्रव्य गुण पर्यायात्मक है। पदार्थ है तो उसमें अनन्त गुण हैं उन सबके प्रति समय कोई न कोई अवस्था रहती है। इस तरह प्रत्येक सत् द्रव्य गुण पर्यायात्मक होते हैं। वही झलक सबके तत्त्वमें मिलेगी। यहाँ प्रधान जो माना है अचेतन ज्ञान वादियोंने उस प्रधान तत्त्वको भी व्यक्त और अव्यक्त ये दो प्रकार बनाने पड़े। वह है क्या? पर्याय और द्रव्य। अव्यक्त है वह द्रव्य है वह व्यक्त है वह पर्याय हुई। अर्थात् द्रव्य गुण पर्यायात्मक प्रत्येक पदार्थ है। आत्मा एक सत् है अखण्ड पदार्थ है जैसा है वैसा है इसे सही रूपमें कोई वचनोंसे बता नहीं सकता। वचनोंसे जब कोई बतायेगा तो उसमें कल्पनाएँ करके भेद बनाकर जुदे जुदे शब्दोंमें कहेगा। देखो जो जाने सो आत्मा है। जो देखे सो आत्मा है। जिसमें ज्ञान, दर्शन आनन्दका अनुभव हो सो आत्मा है। तो क्या ये सारी बातें क्या आत्मामें जुदी जुदी हैं? आत्मा तो जो कुछ कर रहा है वह एक काम कर रहा है प्रति समय। उसका हमें भेद करके बताते हैं कि यह जानता है देखता है। ये सब बातें हम जान करके बताते हैं।

वस्तुत्वकी अन्तः प्रसिद्धि—वस्तुका मूल स्वरूप वचनोंके द्वारा बताया नहीं जा सकता। अन्यकी बात तो जाने दो। आप जैसे मिठाई खा रहे हों तो खाते समय या खानेके बाद आपसे पूछा जाय कि इसका स्वाद तो जरा शब्दोंसे बता दो, इसका वर्णन तो कर दो? तो आप बतानेकी कोशिश तो करेंगे उस स्वादको पर आप ठीक ठीक शब्दों द्वारा बता न सकेंगे। कुछ कुछ बात वे समझेंगे जिन्होंने उस मिठाईको खाया है। इसी प्रकारसे आत्माकी बात किन्हीं भी शब्दोंसे बतायी जाय पर जो आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से परिचित हैं उनको उन शब्दोंसे शीघ्र समझमें आ जाता है कि यह कहता है और जो आत्मासे अपरिचित हैं उनको आत्मा कहकर अथवा उसका विवरण करके समझाये तो बहुत विलम्ब लगेगा। एकदम यह न बता पायेंगे कि लो इसकी चर्चा हुई है। इस तत्त्वको कहते हैं तो यह आत्मा एक स्वभाव है। एक पर्याय रूप है, यह अखण्ड द्रव्य है उसका जब हम विवरण करते हैं तो ज्ञान दर्शन, आनन्द अनेक गुण बताते हैं। उन गुणोंमें एक गुण ज्ञान गुण भी है। ज्ञान आत्माका धर्म है। स्वयं चेतन है, स्वपरको प्रकाशित करता रहता है, उसे ही ज्ञान प्रमाण होता है। जो अपना भी निर्णय रखे और पर पदार्थका भी निर्णय रखे।

प्रमाणके स्वरूपकी मीमांसा – प्रमाणका स्वरूप बताया है जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये ऐसा ज्ञान प्रमाण है। प्रमाण ज्ञान ही होता है, अज्ञान प्रमाण नहीं होता। यद्यपि लोकमें ऐसा व्यवहार है कि हमारा यह दस्तावेज प्रमाण है, यह लिखा–पढ़ी प्रमाण है या ये दिखने वाले गवाह प्रमाण हैं, अथवा इसपर हमारा कब्जा चला आया है यह प्रमाण है। ये सारी वस्तुएँ अचेतन हैं, ये वस्तुतः प्रप्राण नहीं हैं, इन सब बातोंके होते हुए जो जानने वालेके ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान प्रमाण है। दस्तावेजका कागज देखकर जो ज्ञान बना – हाँ इसका ही है, इसने अमुक दिन खरीदा था, इस तरहका जो ज्ञान है वह ज्ञान प्रमाण है, न कि कागज स्याही प्रमाण है। तो प्रमाण ज्ञान ही हो सकता है, अज्ञान नहीं हो सकता। और, वह ज्ञान भी अपनेका और अन्यका निर्णन कराने वाला होता है।

पूर्वपक्षकारोंके अचेतन ज्ञानकी मीमांसा – प्रमाणके लक्षणके प्रसंगोमें यहाँ स्वव्यवसायका प्रसंग चल रहा है। अचेतन ज्ञानवादी, पुरुष और प्रकृतिको ही तत्त्व मानने वाले यहाँ यह बात रख रहे थे कि ज्ञान चेतन नहीं होता क्योंकि वह प्रकृतिकी पर्याय है, पुरुषकी परिणति नहीं है। ज्ञान आत्माका धर्म नहीं है किन्तु प्रकृतिका धर्म है। प्रकृति अचेतन है। अतः ज्ञान स्वव्यवसायी होता नहीं है ऐसी पूर्वपक्षकी इस सम्बन्धमें बात चल रही है। बात होते होते यह बात कही अचेतन वादियोंने कि यदि ज्ञानको आत्माका धर्म मानते हो तो ज्ञान तो नष्ट होता रहता है। अब इस चीजका ज्ञान हुआ फिर अन्यका ज्ञान हुआ तो नष्ट होने वाला ज्ञान यदि आत्माका धर्म है तो आत्मा भी नष्ट हो जायगा, अतः ज्ञान आत्माकी परिणति नहीं बनती, प्रकृतिकी परिणति बनती है। तो इसके उत्तरमें यह कहा जा रहा है कि तब तो प्रकृति अनित्य हो जायगी जब ज्ञान नष्ट होता रहता है और वह है प्रकृतिका धर्म तो प्रकृति अनित्य बन जायगी।

व्यक्ताव्यक्तरूपतासे नित्यानित्यात्मकताकी सिद्धि – अचेतनवादी प्रकृति को नित्य सिद्ध करनेके लिये यह कहें कि भाई, प्रकृत्तिके दो रूप हैं – एक व्यक्त और एक अव्यक्त। जैन शासनकी तुलनामें इसे यों मानें एक द्रव्यत्व और एक पर्याय।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अव्यक्त नाम हुआ द्रव्य जैसा और व्यक्त नाम हुआ पर्याय जैसा। प्रत्येक पदार्थमें ये दो बातें पायी जाती हैं ना ? पदार्थ है तो वह अपने स्वरूपमें ध्रुव है। द्रव्यदृष्टिसे वह पदार्थ नित्य है और अव्यक्त है। द्रव्य किसीने देखा है क्या ? कोई सा भी द्रव्य ! पुद्गलमें जो मूल द्रव्य है वह है परमाणु और परमाणुमें भी परमाणुकी पर्याय होती है उसमें भी जो अणु द्रव्य है वह अव्यक्त रहता है ना, प्रत्येक द्रव्य अव्यक्त रहता है, उनकी दशा, परिणमन, स्थिति व्यक्त हुआ करती है तो प्रकृतिमें जो शक्ति अंश है वह तो परिणति है नहीं। वह सदा रहने वाली है और जो ज्ञान है वह व्यक्त अंश है वह परिणति है। तो कहते हैं कि यही बात आत्मामें लगा लेना चाहिए। आत्मामें जो द्रव्य हैं वह तो अव्यक्त है और सदा रहने वाला है और जो उसका व्यक्त भाव है ज्ञान हो, सुख हो दुःख हो वह सब उसकी पर्याय है और वह अनित्य है। यहाँ भी कोई विपत्ति नहीं।

सत्‌में सर्वथा अपरिणामित्वका अभाव—और भैया ! आत्मा तो क्या, कोई भी पदार्थ सर्वथा अपरिणामी होता ही नहीं, और अपरिणामी है ही नहीं कुछ, जो कुछ भी है वह निरन्तर परिणमता रहता है। नित्यका लक्षण कहा है – तद्भावाव्ययं नित्यं। मायने पदार्थके होते रहनेका व्यय न हो सो नित्य है। नित्य और कुछ अलग नहीं है, वह अपने स्वभावमें अपनी सीमामें अपने ही अनुकूल सदैव होता रहे, उसका नाम है नित्यपना। होते रहनेका विनाश नहीं होता। तो शक्तिकी अपेक्षा आत्मा अनित्य है और व्यक्तिकी अपेक्षा वे सब व्यक्तियां नष्ट होती रहती हैं। अपरिणामी कोई पदार्थ नहीं क्योंकि जो अपरिणामी हो, जरा भी न बदले, जिसकी कोई अवस्था ही न बने वह तो असत् है। कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं जो कुछ परिणमन न रखता हो और सद्भूत हो।

अस्वव्यवसायीके परव्यवसायित्वका अभाव—और भी सोचिये एक मोटी बात यह है कि ज्ञानको यदि अपनी ही व्यवस्था करने वाला माना जाय तो वह पदार्थ की व्यवस्था भी नहीं कर सकता। यदि ज्ञान अपने आपको नहीं जान पाता, मैं ठीक हूँ इस प्रकारका प्रत्यय यदि ज्ञान खुद नहीं कर पाता तो उस ज्ञानका यह अधिकार नहीं है कि किन्हीं पदार्थोंको वह जानता रहे क्योंकि पदार्थोंको जानना, पदार्थोंकी व्यवस्था बनाना यह अमुक है, यह अमुक है, इस व्यवस्थाका अर्थ है क्या ? उस उस प्रकारका अपनेमें अनुभवन चलना। अपनेमें उस तरहका जानन होना। तो वह अनुभवन उस बुद्धिमें कैसे बनेगा जो बुद्धि खुदको नहीं जानती। सांख्य सिद्धान्तमें आत्म तत्त्व स्वतंत्र तो है पर वह मात्र द्रष्टा है, चैतयिता है, ज्ञाता नहीं है इस तरह मानते हैं। और प्रकृतिका धर्म है ज्ञान। उसका जब संसर्ग होता है आत्मामें तब यह आत्मा पदार्थका ज्ञान करता है ऐसा सिद्धान्त है लेकिन यह तो सोचो कि जो भी जानने वाला हो, जानने वाला है ज्ञान स्वयं दूसरेकी अपेक्षा न रखकर दूसरेके संसर्गकी पराधीनता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न रखकर स्वयंको यदि वह जान सकता है तो वह सबको जान सकता है। तो स्वयं का ज्ञान यदि अपने प्रत्यक्षमें है स्वसम्बिदित है तो उससे पदार्थकी व्यवस्था बन सकती है अन्यथा दूसरे आत्माकी बुद्धिसे भी दूसरेकी व्यवस्था बना ली जाय पर ऐसा नहीं होता। इस तरह यह निर्णय करना कि ज्ञान तो स्व व्यवसायात्मक है, अपने आपका निर्णय करता है।

ज्ञानकी स्वसम्विदितताका निर्णय—अब जरा अनुभवसे भी विचार लो कि हम जितना जो कुछ भी जानते हैं उस सबके जाननेके साथ साथ स्वयंमें भी संतोष होना प्रतिभास होना, उजेला रहना, निर्णय रहना ये सब बातें चलती हैं ना। चाहे कोई इसका विश्लेषण न करता हो, उसे उस प्रयोग रूपमें वचनोंमें न लेता हो लेकिन प्रत्येक ज्ञानकी यह तारीफ है कि वह अपने आपको चेतता रहता है, तभी वह वाह्य पदार्थोंका जाननहार होता है। ज्ञान स्वव्यवसायात्मक ही है क्योंकि वह अन्य इन्द्रिय आदिककी अपेक्षा न रखकर पदार्थकी व्यवस्था करता है। देखिये जानना और उस ज्ञानकी उत्पत्ति होना इनमें भी अन्तर है। ज्ञानकी उत्पत्तिमें किन्हीं किन्हीं जीवोंके छद्मस्थोंके तो इन्द्रियकी आधीनता, ज्ञानावरणका क्षयोपशम, अन्य अन्य भी साधन प्रकाश आदिकका होना और इन्द्रियका भी सही रहना ये सब कारण हैं, उत्पत्तिमें कारण है और उत्पत्ति होनेके बाद उनका जो ज्ञान बनता है, जानन चलता है उस जानन क्रियामें यह किसी परकी अपेक्षा नही रखता। मोटे रूपमें यों समझो—किसीने मृदङ्ग बजाया तो उसकी जो ध्वनि निकली उस ध्वनिकी उत्पत्तिमें तो पुरुषके हाथकी अपेक्षा रही पर पुरुषके हाथकी अपेक्षा रखकर उत्पन्न होनेपर उसमेंसे जो परिणमन हो रहा है वह ध्वनि हाथकी अपेक्षा नहीं रखती। ध्वनिकी उत्पत्तिमें तो अपेक्षा है पर ध्वनिकी वर्तनामें अपेक्षा नहीं होती। ज्ञान जितने हैं वे सब स्वव्यवसायी हैं, इन्द्रिय आदिककी अपेक्षा न रखकर पदार्थकी वे व्यवस्था नहीं करते हैं। जो स्वव्यवसायी न हो अर्थात् अपने आपका निश्चय करने वाला न हो वह पदार्थकी भी व्यवस्था नहीं कर सकता।

दृष्टान्तपूर्वक अस्वव्यवसायित्वके परव्यवसायित्वके अभावका समर्थन—जैसे दर्पण है दर्पण स्वका निश्चय तो नहीं करता। अचेतन है अज्ञानी है तो वह पदार्थोंकी भी व्यवस्था नहीं करता। भले ही उस दर्पण अचेतनमें पदार्थका प्रतिबिम्ब आ गया लेकिन कौन सी कसर ऐसी रह गयी कि दर्पण पदार्थकी व्यवस्था नहीं बना पाता जैसी कि हम आप बनाते हैं। वह कमी है चेतनकी। दर्पणमें उतने पदार्थका आकार आ गया तिसपर भी दर्पण जानने वाला नहीं है क्योंकि वह स्वका निश्चय नहीं रखता। चेतन नहीं है, लेकिन इस आत्मामें, इस ज्ञानमें ये सब पदार्थ आ गए, प्रतिबिम्बित हो गए। यहाँ प्रतिबिम्बितका अर्थ उनका ग्रहण मात्र जानन मात्र है लेकिन लगता ऐसा है ना, कि जो आकार है उस सब आकारको इस ज्ञानने अपनेमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मसाक्षात् कर लिया तब यह जानता है। तो सब आकार आ गया ज्ञानमें और फिर यह व्यवस्था भी बनी है तो क्यों बनी है ? यह ज्ञान स्वयं स्वव्यवसायी है। अपने आपका खुद निश्चय करने वाला है, चेतने वाला है इस कारण यह सबकी व्यवस्था बनाता है तो ज्ञान सबका निश्चय करता है और परका भी निश्चय करता है ऐसी स्वपर प्रकाशकता है ज्ञानमें। यदि ज्ञानको स्वव्यवसायी न मानें जैसे कि अचेतन ज्ञानवादियोंके सिद्धान्तमें कहा हैं कि यह आत्मा ज्ञानके द्वारा अध्यवसित अर्थको जानता है आत्मा सीधा नहीं जानता। ज्ञान सीधा नहीं जानता किन्तु ज्ञान आत्मामें एक आकार सोंप देता है तब यह आत्मा जानता है ऐसे पुरुषक अनुभवकी अपेक्षा रख कर अर्थकी व्यवस्था बनाता है। वहाँ अर्थ व्यवस्था यों सम्भव नहीं कि न तो आत्मा स्वव्यवसायी रहा, न ज्ञान स्वव्यवसायी रहा। फिर जाना किसको ? ज्ञान वही ठीक है जो अपने आपका भी प्रकाश करता हो और परका भी प्रकाश करता हो।

ज्ञानपरिणमनके अनुसार शान्ति अशान्तिकी सम्भवता—देखिये हम आप सब चाहते हैं शान्ति और अशान्तिका सम्बन्ध है ज्ञानसे। लोकव्यवहारमें भी हम जिस तरहका ज्ञान करते हैं उस तरहका अपनेमें अनुभवन पाते हैं। जितने भी सुख अथवा दुःख हम अनुभव करते हैं वे सब उसके अनुकूल ज्ञानसे, विकल्पसे अनुभव करते हैं। कदाचित् किसी प्रदेशमें हो रहे काममें व्यवसायमें दूकानमें हो तो गया हो नुकशान और यह खबर मिली हो कि उसमें बहुत फायदा हुआ है तो यह तो सुखका अनुभव करेगा क्योंकि ज्ञान इस रूप चल रहा है जिस रूपमें सुख अनुभवा जाय, और कदाचित् हुआ हो बहुत फायदा और खबर आयी हो कि उसमें तो बहुत टोटा पड़ गया तो यह तो दुःख मानेगा क्योंकि जिस कल्पनामें दुःख होना चाहिए उस कल्पना का रूप रख लिया है ज्ञानने। तो ज्ञानके परिणमनके अनुसार सुख दुःख आनन्दका अनुभव हुआ करता है। अतएव हमें उस ज्ञानको समझना तो चाहिए जिस ज्ञानकी डोरसे ही ये सारे काम चल रहे हैं।

संसरण व मुक्तिका भी प्रेरक ज्ञानका प्रवर्तन—संसारके जितने भी क्लेश हैं, बन्धन हैं, जन्म मरणके चक्र लग रहे हैं ये सब भी हमारे ज्ञानके किसी विपरिणमके कारण हैं। और, जब हम संसारसे छूटेंगे, बन्धनसे मुक्त होंगे तो वे सब भी बातें हमारे ज्ञानके ही एक विशुद्ध परिणमनसे होंगी। जो देहको मानता है कि यह मैं हूँ उसे देह मिलते ही रहेंगे, संसारमें रुलते रहें इसकी कुञ्जी यही तो निकली कि इस देहको यह मैं हूं ऐसा मानते रहें। देहके दुर्बल होनेसे अपनेको दुर्बल माना और देहके बलिष्ठ होनेसे अपनेको बलिष्ठ माना, इस देहकी प्रशंसा, विनय आदि किए जानेपर अपना बड़प्पन माना तो इससे तो यह देह मिलते रहनेकी संतति चलती रहेगी और यदि यह अनुभव चले सूक्ष्म दृष्टि देकर, अपना स्वलक्षण जो चैतन्य स्वरूप है उसपर दृष्टि देकर कि एतावन्मात्र मैं हूं मैं चेतन हूँ, अमूर्त हूँ, निर्लेप हूँ, एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिभास स्वरूप पदार्थ हूँ ऐसे अनुभवमें आये ज्ञान, ऐसा उपयोग बनाये कि अन्य सब देहा आदिक परपदार्थोंके भानको भी न करे केवल एक स्वरूपका ही उपयोग रहे, यही मात्र मैं हूँ तो चूंकि उस समय यहींसे तोड़ लिया ना भेद विज्ञान द्वारा, अभीसे ही सम्बन्ध तोड़ लिया यों पर पदार्थोंसे विविक्त अपने आपको निहारनेपर यह आत्मा कर्मोंसे परपदार्थोंसे मुक्त हो जायगा। तो संसारका बढ़ते रहना अथवा मुक्तिका प्राप्त करना यह सब भी हमारी ज्ञान कलापर निर्भर है।

अभेद दृष्टिसे ज्ञानकी सर्वस्वता—यद्यपि सिद्धान्तमें यह भी बताया है कि ज्ञान न रुलाता है, ज्ञान न मोक्ष दिलाता है, ज्ञान न बन्धन करता है, ज्ञान न निर्जरा करता है। निर्जराके कारण हैं श्रद्धान और चारित्र। ज्ञान न मिथ्या होता न सम्यक् होता। वह भी एक जाननहार तत्त्व है। सम्यक् और मिथ्या सम्यक्त्व और मिथ्यात्वकी सम्पर्कसे है लेकिन वे सब बातें इस ज्ञानकी ही तारीफ करने वाली हैं। एक दृष्टि की बात है। जब हम अखण्ड वस्तुको, अखण्ड स्वरूपको निहारते हैं तो इस आत्मीय अखण्डको, अखण्ड स्वरूपको देखें तो हम ज्ञान द्वारा ही देख सकते हैं, ज्ञानमात्र मैं हूँ। यह ज्ञान जब जीवादिक पदार्थोंके श्रद्धान रूपसे परिणमता है, एक दृढ़ निश्चय रूपसे जैसा है तैसे वैसा ही निश्चय करके रहता है तो यही है श्रद्धान। और जब यह ज्ञान अपनी ही ज्ञान वृत्तिमें स्थिर रहता है तब यही हुआ सम्यक् चारित्र, रागद्वेषकी निवृत्ति होनेका नाम सम्यक्चारित्र उपचारसे कहा गया है। चूंकि जब यह ज्ञान ज्ञानस्वरूपमें अपनी वृत्ति करता है तो वहाँ रागद्वेष दूर होनेका नाम सम्यक्चारित्रमात्र प्रतिषेध रूप तत्त्व नहीं है। विध्यात्मक है। किसी बातके होनेका नाम चारित्र है सो बतावो रागद्वेष दूर करनेका नाम चारित्र है। यह तो एक विशेषता बतायी गयी। चारित्रका स्वरूप नहीं है। चारित्रका स्वरूप है ज्ञान ज्ञानमें स्थिर हो जाय। ज्ञानवृत्ति बराबर यही ज्ञानमय बनती रहे तो वह भी ज्ञानकी ही तारीफ है। मतलब यह है कि जो कुछ हमपर बीतता है वह ज्ञानके अनुसार बीतता है। वह ज्ञान क्या है उसका स्वरूप यहाँ कहा जा रहा है।

बुद्धि अनुभव आदिकमें ज्ञानकी पर्यायरूपता बुद्धि, अनुभव, ज्ञान ये सब अभेदरूप बातें हैं। एक ही अनुभवसे युक्त जो ज्ञानकी सकल है, ज्ञानकी अवस्था है, वही हर्ष विषाद आदिक अनेक पररूप है और विषयोंकी व्यवस्था करने वाला है, अनुभवमें आता है, उसीको पदार्थ कहो, बुद्धि कहो, अध्यवसान कहो सब एक पर्यायकी बातें हैं। शब्दोंमें भेद होनेसे वस्तुमें अर्थमें भेद नहीं हो जाता। हाँ, इतनी बात जरूर है शब्दभेदसे यों भेद बनता है कि उसकी चीजको कोई शब्द किसी रूपसे तारीफ करता है कोई किसीरूपसे तारीफ करता है। जैसे मनुष्यके अनेक नाम हैं मनुष्य, मानव, जन, अब इन सबके अर्थ जुदे जुदे हैं। जन उसे कहते हैं जो उत्पन्न हो, मनुष्य उसे कहते हैं जिसमें मन श्रेष्ठ हो, मानव उसे कहते हैं जो मनुकी सतानसे चला आया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हो। तो शब्दभेदसे एक उस मनुष्यकी तारीफमें तो भेद हुआ पर इन भिन्न शब्दोंसे कहा है इस मनुष्यको ही। तो इस प्रकार केवल इस ज्ञानके पर्यायवाची शब्दोंसे ज्ञान की तारीफमें तो भेद हुआ पर अर्थमें भेद नहीं हुआ। बुद्धि उसका नाम है जो क्षायोपशमिक ज्ञान है खण्ड खण्डरूप जानता है जान जानकर नष्ट होता रहता है वह बुद्धि है। ज्ञान पर्यायमें तो उसका नाम है जो वस्तुके यथार्थ स्वरूपको जानता रहता है और शक्तिसे स्वभावका नाम है तो यों भेद पड़ गए।

जीवके विशेषण नामोंके दृष्टान्त द्वारा ज्ञान तत्त्वकी एकताका समर्थन

जैसे कुछ लोग कहते हैं चैतन्य, जीव, आत्मा, परमात्मा, ये तीन न्यारे न्यारे पदार्थ हैं लेकिन न्यारे नहीं हैं। एक ही चैतन्यस्वरूप पदार्थके ही ये नाम हैं। अब अपेक्षासे यों लगा लें कि जीव उसका नाम है जिसमें आयु आदिक ये प्राण चल रहे हैं, इससे जिन्दा बने रहते। जैसे कहते हैं कि यह मनुष्य जिन्दा है, अब यह मर गया है, उन दश प्राणोंसे जीवे वह जीव है और उसमें भी जो प्राणोंका सम्पर्क रखता है अर्थात् बहिरात्माका नाम जीव है, एक जो स्वरूप बताया है एक जीवोंका उसको समन्वय करके कहा जा रहा है। आत्मा उसका नाम है जो जाननहार है यथार्थ जानता है, जो सम्यग्ज्ञानी है अर्थात् अन्तरात्माका नाम आत्मा है और जो सर्व कर्ममुक्त हो गया, अनन्त ज्ञानसम्पन्न हो गया, समस्त विश्वका ज्ञाता है वह है परमात्मा। तो यों विशेषतामें भेद है पर मूलमें द्रव्यभेद नहीं है। उन सब विशेषोंमें एकरूप चैतन्य है। तो ऐसे ही समझिये कि यह ज्ञान ज्ञानरूप है, सब एक समान है, अपने आपको भी जानता है ऐसा ज्ञान स्वभावी आत्मा हम आप सबमें मौजूद है वही शरण है वही सार है उस पर ही सारी प्रगति निर्भर है जो इसकी ओर आता है वह संसारसे मुक्त हो जाता है।

अचेतन ज्ञानवादियों द्वारा दृष्टान्तपूर्वक बुद्धि चैतन्यमें भेदभ्रमका कथन

ज्ञान खुद अपने आपको जानता है, इस सम्बन्धमें अचेतन ज्ञानवादी यह कह रहे हैं कि ज्ञान आत्माका स्वभाव नहीं है किन्तु ज्ञान है प्रकृतिका धर्म। लेकिन हम लोगोंको जो ज्ञान और आत्मा एक नजर आ रहा है उसका कारण यह है कि प्रकृति का धर्म बुद्धि और आत्माका धर्म चैतन्य इन दोनोंमें है संसर्ग विशेष निकट सम्बन्ध, उसकी वजहसे तुम ठगाये गये हो और तुम्हें बुद्धि और चेतनमें भेद नहीं मालूम पड़ता है वहाँ भेद। जैसे लोहेका गोला और अग्नि। कोई लोहेका गोला अग्निमें तपा दिया जाय और निकाल दिया जाय तो वहाँ देखो लोहेका गोला जुदी चीज है और अग्नि जुदी चीज है जो कि लोहेके गोलेमें ही पड़ी हुई है। गर्म हो गया है ना। तो भेद है अग्निका और लोहेके गोलेका, मगर भेद कहाँ मालूम होता है? एक प्रतीत होता है। इसी तरह बुद्धि और चैतन्यमें भेद तो है, पर, तुमको एक मालूम पड़ता है। इस तरह अचेतनज्ञानवादी सांख्य लोग जैनोंके प्रति या जितने भी स्वसम्वेदन ज्ञानवादी हैं उन के प्रति कह रहे हैं और कहते ही जा रहे हैं। देखो लोहेके गोलामें और अग्निमें भेद

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है यह बात नहीं कह सकते। भेद है क्योंकि दोनोंमें रूप और स्पर्शका भेद नजर आता है। लोहेका गोला तो स्पर्श है और अग्नि रूप है। तो रूप वाली हुई अग्नि और स्पर्श वाला हुआ लोहेका गोला। तो भेद है कि नहीं। लोहेके गोलेमें देखो एक गोल आकार है कठिन स्पर्श है और उससे भिन्न अभिन्न है जिसमें चमकता हुआ रूप है और उष्ण स्पर्श है यह तो बिल्कुल समझमें आ रहा है। तो जैसे लोहेके गोलेमें और अग्निमें भेद है पर वह एक दूसरेमें बिल्कुल प्रविष्ट गया है। ऐसा संसर्ग होनेके कारण अब भेदका ज्ञान नहीं हो रहा है इसी तरह बुद्धि और चेतन इन दोनोंमें भेद है। बुद्धि है प्रकृतिका धर्म, चैतन्य है आत्माका धर्म पर उसमें एक अन्योन्यानुप्रवेश संसर्ग हो गया है इस कारण भेद नहीं जचता, पर भेद है। तब इससे यह सिद्ध हुआ कि वास्तवमें आत्मा जानता नहीं है किन्तु जब प्रकृतिका धर्म ज्ञान आत्मामें पदार्थका आकार सौंप देता है तब वह जानता है और ऐसा ज्ञान चूंकि प्रकृतिका धर्म है, अचेतन है अतएव स्वयंको नहीं जानता, ऐसी सांख्यसिद्धान्तने अपनी बात रखी।

बुद्धि व चैतन्यमें भेद सिद्ध करनेके लिये गलत दृष्टान्तका प्रयोग – उत्तरमें कह रहे हैं कि यह बात युक्त यों नहीं है कि दृष्टान्त भी तुम्हारा गलत है। अग्निमें और लोहेके गोलेमें उस समय भेद नहीं है, वह एक ही चीज है, क्या है कि वह लोहेका गोला अग्निके सम्बन्धके पहिले एक शीतल अवस्थामें था, अब अग्निका सम्बन्ध पाकर पूर्व आकारका उसने त्याग कर दिया अर्थात् जो उसमें रूप था, कृष्णरूप था, ठंडका स्पर्श था वह सब त्याग कर दिया और विशेषरूप और विशेषस्पर्श पर्याय उसमें बन गयी। विशेषरूप क्या हुआ कि वह लाल हो गया और स्पर्शमें क्या बदल हुई कि अब उष्ण बन गया अर्थात् जो ठंडे पर्यायमें था अब उसे त्यागकर उष्ण पर्यायमें आ गया। तो रूप और स्पर्श दोनोंका आधारभूत वह एक लोहेका गोला है। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है तो घड़ा पहिले तो कच्चे आकारमें था और अग्निका सम्बन्ध होनेसे अब वह पके आकारमें हो गया मगर तब भी घट अब भी घट। दोनों अवस्थावोंमें वह एक घट आधार था। इसी तरह जो लोहेका गोला पहिले शीतल और कृष्ण पर्यायरूपमें था वही इस समय उष्ण पर्याय और भासुर रूपमें हो गया। वहां भेद नहीं है जिससे तुम बुद्धि और चेतनमें भेद देखना चाहते।

ज्ञानादिक चैतन्यके अनर्थान्तर – बुद्धि, चैतन्य, अनुभूति, प्रतीति, ज्ञान ये सब एक उस चेतन विशेषके ही पर्यायवाची शब्द हैं। अन्तर थोड़ा सा इतना ही भर रह गया। जैसे ज्ञान ५ होते हैं ना—आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। ज्ञानकी मति, स्मृति संज्ञा, तर्क, अनुमान ये उसकी पर्यायें हैं तो इनमें परस्परमें अन्तर है, पर मूल जो लक्षण है उससे अन्तर नहीं है, इसी तरह बुद्धि, प्रतीति, ज्ञानानुभव, यह सब उस चैतन्य विशेष रूप ही पर्याय है, पर कुछ विशेष इसमें हैं। तो यह बुद्धि अथवा ज्ञान आत्माका ही स्वभाव है। और आत्मा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

से प्रथक् नहीं है हम जिस ज्ञानके द्वारा जगतके पपार्थोंको जानते हैं जिस ज्ञानके द्वारा हम अपने आपमें विश्राम और शान्ति लेना चाहते हैं उस ज्ञानका परिचय प्राप्त करें तो मेरे लिये बहुत स्पष्ट निर्णय और मार्ग मिल जायगा। अतः ज्ञानकी जानकारीके लिये इन दार्शनिक ग्रन्थोंमें सर्वप्रथम इसीका ही स्वरूप कहा जा रहा है।

औपाधिकभावोंकी स्थास्नुताकी विभिन्नतायें – यहां तक यह बात बताई कि जैसे लोहेके गोलेमें अग्नि अलग चीज नहीं है किन्तु वह लोहेका गोला ही शीत पर्यायको त्यागकर उष्ण पर्यायको प्राप्त हुआ है वह उष्णता औपाधिक है और वह लोहेके गोले की ही चीज है इसपर अचेतन ज्ञानवादी फिर आशंका कर रहे हैं कि यदि लोहेके गोले से अग्नि जुदी नहीं है, वह गोला ही उष्ण रूप बन गया है तो थोड़ी ही देर बाद फिर उसकी अग्नि खतम क्यों हो जाती है ? यदि लोहेकी ही चीज है तो उसमें ही सदा बने रहना चाहिए उत्पत्तिके अनन्तर ही उस अग्निका विनाश क्यों होता ? उत्तर देते हैं कि यह आशंका तुम्हारी ठीक नहीं है क्योंकि उत्पत्तिके बाद ही उष्णताका विनाश नहीं देखा जाता। हाँ औपाधिक जितने परिणमन हैं उनमें यह अन्तर हो सकता है कि कोई तो उपाधिके वियोगके तुरन्त बाद नष्ट हो जाते हैं। कोई उपाधिके वियोगके बाद कुछ काल बाद नष्ट होते हैं। जैसे अग्निका सम्बन्ध पाकर दूध भी गर्म होता पानी भी गर्म होता और लोहा भी गर्म होता, पर उपाधिका अग्नि वियोग होने पर लोहा, अधिक देर तक गर्म रह जाता। दूध कुछ कम देर तक गर्म रहता, पानी और भी कम देर तक गर्म रहता तो यह पदार्थकी योग्यतापर निर्भर बात है और कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं कि उपाधिके वियोग होनेके तुरन्त बाद मिट जाती है।

औपाधिक भावोंकी विविध स्थास्नुताओंके कुछ उदाहरण— जैसे दर्पण के सामने हमने हाथ किया तो दर्पण उस छायारूप परिणमन तो गया किन्तु जैसे ही हम हाथ हटा लेते, तुरन्त प्रतिबिम्ब मिट जाता तो वह प्रतिबिम्ब भी नैमित्तिक है। हस्तका निमित्त पाकर दर्पणका वह आकार बना है। और, उस कालमें वह उसी दर्पणकी अवस्था है, हाथकी जो दशा है वह हाथमें ही मिलेगी। इसके रूप, रस, गंध, स्पर्श आकार जो कुछ हैं वे हाथमें ही है तो हाथका निमित्त पाकर दर्पण जैसे प्रतिबिम्बित हो गया और वह ऐसा औपाधिक परिणमन है कि हाथ बाहर करदें तो तुरन्त दूर होता है क्षण मात्र भी नहीं रहता। जैसे अग्निका सम्बन्ध पाकर पानी गर्म हुआ और अग्निपरसे पानी हटा दे तो वह कई मिनट जैसे वैसाक वैसा ही गर्म रहता है। लेकिन यह दर्पणक ऐसा औपाधिका परिणमन है कि हाथ अलग करे तो तुरन्त प्रतिबिम्ब मिट जाता है। तो कोई औपाधिक भाव ऐसा है कि तुरन्त ही उसका विलास मिट जाय और कोई औपाधिक भाव ऐसा है कि निमित्तके दूर होनेपर भी कुछ क्षण बराबर बना रहता है। तो यह तो अपने अपने पदार्थोंकी विशेषता है। भोजन किया और भोजन करनेका निमित्त करके एक सुख माना, भोजन कर चुकनेके बाद भोजन

का वियोग हो गया लेकिन वह सुख परिणमन बहुत देर तक चलता रहता है। तो कुछ औपाधिक भाव ऐसे हैं कि उपाधि मिटनेके बाद भी कुछ देर तक चलते रहते हैं और कुछ ऐसे हैं कि उपाधि मिटनेके अनन्तर ही नष्ट हो जाते हैं। तो अग्निमें और गोलामें जो भेद बतला रहे हो तो भेद नहीं है, वह गोला ही गर्मरूप परिणम गया है। अब गोलाको जब उस स्थानसे हटा दिया जहाँ कि गर्म कर रहे थे तो हटा लेने पर तुरन्त ही गर्मीका विनाश नहीं है, गर्मीका विनाश कुछ देर बादमें होता है। अथवा तुरन्त भी हो जाय तिसपर भी जो कि नष्ट हुई है उस उपादानकी अपनी परिणतिसे। यों बुद्धि और चेतनमें भेद नहीं किया जा सकता।

ज्ञानकी स्वपरप्रकाशकता – मैं आत्मा हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ और इस ज्ञानमें ऐसी खूबी है कि वह अपने आपको जानता रहे और परको भी जानता रहे, स्वपर प्रकाशकता प्रत्येक ज्ञानमें पायी जाती है। किसीको अपने ज्ञानका पता न हो वह भी स्वपरप्रकाशक ज्ञान रख रहा है और जिसे अपने ज्ञानकी इस खूबीका परिचय हो उस का भी ज्ञान स्वपरप्रकाशक है। जैसे कभी कोई विशेष काम हो लाभका तो उस लाभके लोभमें वह पुरुष बहुत जल्दी घरसे निकलता है और कदाचित् उसके सिरमें कोई ऊपर चीज थोड़ीसी लग जाय या बांहमें कुछ छिल जाय तो उसे पता नहीं पड़ता क्योंकि उसका उपयोग परवस्तुमें है, जिसमें लाभ माना है वहां उसका उपयोग गया है इस कारण पता नहीं पड़ता लेकिन वहाँ जो हुआ सो तो हुआ ही है। ऐसे ही जिन अज्ञानी जनोंको अपने ज्ञान स्वरूपका परिचय नहीं है और इस ज्ञानका इस तरह विश्लेषण नहीं कर पाते, न कर पावें, मगर बात तो सबपर एक सी ही बीतती है। उसका मूल निर्णय एक है, वस्तुस्वभाव कि वह सब पर प्रकाशक है। मिथ्यादृष्टिका भी ज्ञान स्वपरप्रकाशक है, अज्ञानीका भी ज्ञान स्वपरप्रकाशक है। इसका अर्थ यह न लेना कि अज्ञानी अपने आत्माको अपने ज्ञानको अब ज्ञानस्वभावरूपसे जान रहा है लेकिन अर्थ यह है कि कोई सा भी ज्ञान हुआ, ज्ञानका स्वरूप ही ऐसा है कि अपने आपका भीतरमें निर्णय हो उस ही पद्धतिसे बाह्य पदार्थोंको जानता है एक विपरीत ज्ञानी पुरुष सीपको चाँदी जान रहा है तो भले ही सीपको चाँदी जाने और दृढ़तासे जान रहा है कि यह चाँदी है, किन्तु उसे अपने ज्ञानमें पूर्ण सच्चाईका निर्णय बन रहा है कि मेरा ज्ञान सही है। मेरा ज्ञान सही है ऐसा जाने बिना वहाँ चाँदीका जानना नहीं बन सकता। देखिये विपरीत ज्ञान है, पदार्थ जैसा है वैसा ही जानता रहे फिर भी वहाँ दृढ़तासे जानता और अपने ज्ञानको भी दृढ़तासे समझ रहा है। अज्ञानीका भी ज्ञान स्वपर प्रकाशक है ज्ञानीका भी ज्ञान स्वपर प्रकाशक है। ज्ञानका स्वरूप है स्वपर प्रकाशक।

शाश्वत ज्ञान शक्तिके परिणमन – तो ज्ञान स्वका निश्चय करने वाला है और परका भी निश्चय करने वाला है। इस प्रकार स्वपर प्रकाशकरूपसे अनुभव किया

गया जो यह ज्ञान है, निजतत्त्व है उसमें फिर अलगसे तत्त्वज्ञानका सम्पर्क जोड़ना यह युक्त नहीं है। ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व है उसमें ज्ञानका सम्बन्ध बनाकर फिर उसे ज्ञानी मानना यह युक्त बात नहीं है। यदि ऐसा कहोगे तो कहीं भी व्यवस्था न बनेगी। अच्छा बतावो यह चौकी कैसी है ? कोई कहेगा लाल है, हम कहेंगे लाल है ही नहीं, इसमें लाल रङ्गका सम्बन्ध जुड़ा है तब लाल है, इसमें रूप भी कुछ नहीं है, रूपके सम्बन्धसे रूपी है। तुम कोई व्यवस्था ही नहीं बना सकते। जिस चाहेमें भेद कर डालेंगे। किसी वस्तुका कोई स्वभाव ही न रहेगा और स्वभाव न रहेगा तो फिर वस्तु क्या ? इस कारण यह मानना कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है और उस ज्ञानस्वरूप आत्माके ही वे सब परिणमन चल रहे हैं। बुरा जानें, भला जानें, थोड़ा जानें, बहुत जानें ये सब आत्माके ज्ञानके परिणमन हैं।

ज्ञानकी तिरोभूततामें प्रकृतिकी निमित्तता—भैया ! जो ज्ञानमें भेद आया है – कोई कम जानता कोई अधिक जानता वे भेद उपाधिके सम्बन्धसे आये। ज्ञान उपाधिके सम्बन्धसे नहीं बना किन्तु ज्ञानमें जो तारतम्य है, कम जाननेकी बात है वह उपाधिके सम्बन्धसे आया। जैसा इसके ज्ञानावरण प्रकृतिका उदय है उसे उस प्रकारका अज्ञान बना है। तो ये अचेतन ज्ञानवादी ज्ञानको भी प्रकृतिकी चीज कह रहे हैं। जैसे लोग यह भी कह बैठते हैं कि इनके ज्ञान बहुत हैं, इनके कर्म बहुत अच्छे हैं, इनके पुण्यका बहुत अच्छा उदय है, खूब ज्ञान मिला है। अरे ज्ञान कहीं कर्मोंके उदय से मिलता है, पर ऐसा कहते हुए बहुतसे लोग पाये जाते हैं। उसी ढङ्गसे ये भी कह रहे हैं कि प्रकृतिसे ज्ञान बनता है। पुरुषप्रकृतिवादके सिद्धान्तमें ये समस्त जितनी भी विभिन्न रचनाएँ हैं वह सब प्रकृतिका खेल है। आत्मा तो केवल द्रष्टा है, चैतन्यस्वरूप है, अपरिणामी है। जितनी विभिन्नता है यह सब मायाका खेल है। इस प्रकृतिसे बुद्धि तत्त्व उत्पन्न होता है। फिर बुद्धिसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है। फिर अहंकार के बाद इन्द्रियके विकल्पोंकी भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय इनकी उत्पत्ति होती है। और, फिर उससे ये सब शरीरभेद उत्पन्न होते हैं। तो जितने जो कुछ भी वैचित्र्य हैं वे सब प्रकृतिके वैचित्र्य हैं।

जैनशासनमें प्रकृतिका स्थान—प्रकृतिके सम्बन्धमें इसका समन्वय करनेके लिए थोड़ा जैनशासनके अनुसार सोचिये—जैसे कभी बहुत सुरम्य स्थानपर अपन पहुँचे। शिमला, मंसूरी, काश्मीर किसी भी जगह जायें और रमणीक फल वृक्ष पत्ते वगैरह हों, नदी भी बह रही हो, नाला भी बहता हो, कलकलाहटके शब्द भी आ रहे हों, कुछ चिड़ियाँ भी चहक रही हों तो ऐसे दृश्यको देखकर कोई लोग कहने लगते हैं—वाह कैसा रमणीक दृश्य है देखो प्रकृति कितनी सुहावनी है। भला बतलावो तो सही कि वह प्रकृति क्या चीज है ? किसका नाम प्रकृति है ? और, किसकी खूबी है जो इतना सुहावना दृश्य लगता है ? क्या है वह प्रकृति ? इसका जैनदर्शनसे निर्णय

http://sahjanandvarnishastra.org/

करें। वह प्रकृति है कर्मकी। कर्ममें नाना प्रकृतियाँ पायी जाती हैं और जिस जीवके साथ जिस प्रकारकी प्रकृति बँधी हुई है उसके उदयमें उसका उस प्रकारसे परिणमन होता है। अब देख लीजिए ! फूलोंकी विचित्रता। कोई एक फूल ऐसा होता है जिस में आप ७ रङ्ग पायेंगे और विचित्र ढङ्गसे और उसीके पेड़में किसी जगह और ढङ्गके फूलोंके रङ्ग पायेंगे। इतनी प्रकारकी फूलोंमें जो विचित्रता है वह क्या स्वाभाविक विचित्रता है ? वह तो प्राकृतिक विचित्रता है, स्वाभाविक विचित्रता नहीं है। स्वभावमें और प्रकृतिमें अन्तर है। प्रकृति तो एक कृत्रिम चीज है, आदिम है और स्वभाव आदिम नहीं है। तो इतनी प्रकारकी विचित्रतामें उस रमणीक स्थानमें मालूम पड़ रही है वह है क्या ? उन–उन जीवोंके साथ जिन जीवोंने फूलका शरीर लिया है, पत्तीका शरीर लिया है उन–उन जीवोंके उस उस प्रकारकी विचित्र कर्मप्रकृतियाँ लगी हुई हैं और उनके उदयमें उनका ऐसा विचित्र परिणमन चल रहा है। यह है प्रकृतिकी चीज। जब कहा कि कितने प्राकृतिक दृश्य हैं ? तो उसका अर्थ यह है कि कर्मप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुई शरीरकी शोभा। उस प्रकृतिसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, ज्ञानस्वरूप तो यह स्वयं आत्मा है।

ज्ञानमें प्रकृतिधर्मत्वकी मान्यता बना सकनेका आधार—इस प्रसङ्गमें एक बात और जानें कि आखिर वनवासी अन्त संत भी ऋषी लोग थे। अपनी समझ के माफिक कल्याणके लिए घर त्यागा था ऋषी हुए थे, जङ्गलमें रहते थे और सिद्धान्तकी रचना करते थे। सांख्य आदिक सभी लोग। तो लोगोंने कौनसा आधार ऐसा पाया जिसपर वहाँ यह देखा जाय कि आत्मा ज्ञानशून्य है। जब ज्ञानका सम्बन्ध बनता है आत्मामें, तब आत्मा जानता है। ऐसा निर्णय करनेके लिये उन्होंने आधार क्या पाया ? निराधार ही बात तो नहीं बनती। उन्होंने आधार यह पाया कि यह देखा लोगोंमें, जीवोंमें कि ये लोग ज्ञान करते हैं और वह ज्ञान मिट जाता है, विघट जाता है, कम होता है, आता है चला जाता है। तो ये सब जो आयें और चले जायें ऐसा ज्ञान होना आत्माका स्वभाव होना आत्माका स्वभाव नहीं बनता। जिसे जैन शास्त्रमें क्षायोपशमिक ज्ञान कहते हैं, क्षायोपशमिक ज्ञान आत्माका स्वरूप नहीं है। उस क्षायोपशमिक ज्ञानको ही समग्र ज्ञान मानकर ज्ञानका निषेध किया है कि ज्ञान आत्माका स्वरूप नहीं है, साथ ही यह निरखकर कि किसीमें कम ज्ञान है, किसीमें अधिक ज्ञान है तो इस ज्ञानका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध आत्मासे नहीं है क्योंकि आत्मा तो सब एक है, स्वरूप उन सबका एक है, यह भेद क्यों बना है ? उनका सम्बन्ध किसी अन्य विरोधी धर्मोंसे है और उसका नाम है प्रकृति। तो इस तरह ज्ञानको प्रकृतिका धर्म कहा गया है।

ज्ञानस्वरूपकी खोज—जरा ज्ञानत्वकी खोजमें कुछ स्खलन हो गया कि जिस ज्ञानको निरखकर निर्णय किया गया कि यह आत्माका स्वरूप नहीं है वह ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यथार्थ ज्ञान यथार्थ स्वरूप मूलभूत स्वभाव न था। जब क्षयोपशमिक ज्ञान हट जाता है तो एक ऐसा निर्विकल्प ज्ञान बनता है जिसमें किसी भी पदार्थका विकल्प आकर नहीं रहता। उस स्थितिमें हम लोगोंको ऐसा बोध होता है कि वह जानता ही क्या है ? तो ऐसे ही अनेक प्रकारोंको निरखकर यह निर्णय कर डाला गया कि ज्ञान आत्मा का धर्म नहीं है किन्तु प्रकृतिका धर्म है। किन्तु, प्रकृतिका धर्म होता यह ज्ञान तो प्रकृति ही ज्ञाता, प्रकृति ही भोक्ता, प्रकृतिपर ही सारा भार होता। और, तब प्रकृति ही संसारी होता और प्रकृतिको ही मोक्ष दिलाया जाता। तो भेद विज्ञानके इन शास्त्रोंकी क्या जरूरत थी ? इसमें ज्ञान आत्माका स्वरूप है और वह स्वपर व्यवसायी है ऐसा स्वपर प्रकाशात्मक ज्ञानमात्र अपनेको निहारना चाहिए। यही स्वरूप है और सबसे न्यारा है। इस अनुभवमें अपने आपमें वह ज्योति प्रकट होती है जिसके कारण भव-भवके कर्म भी भस्म किए जा सकते हैं।

स्वरूपको अन्यका धर्म बना देनेसे व्यवहारोच्छेद – आत्मा ज्ञानस्वभाव है और अपने द्रव्यत्व गुणके कारण प्रति समय ज्ञान विवर्तरूपसे वह परिणमता रहता है। फिर भी आत्मामें ज्ञान पर्याय बनानेके लिए अथवा समस्त लोकको जाननेकी व्यवस्था बनानेके लिए ज्ञान प्रकृतिका धर्म है और ज्ञानका सम्बन्ध आत्मासे होता है तब पदार्थके जाननेकी व्यवस्था बनती है ऐसी हठ किए जानेपर फिर तो किसी भी प्रकार का व्यवहार न बन सकेगा। एक प्रमाणसिद्ध अनुभवसिद्ध एकत्वमें भी भेद करके अन्यका धर्म उसमें रखा जानेकी हठ बनायी जाय तो यों आप कुछ भी काम नहीं कर सकते। जो अनिष्ट पदार्थ हैं –जैसे सर्प है, कांटा है, बिच्छू है इनका तो आप परिहार करते हैं और जो इष्ट चीज है जैसे परिजनमें रहना आदि इष्ट पदार्थोंमें जब परिणति कर रहें हों वहाँ भी यह आशङ्का आ जायगी कि कहीं यहाँ बिच्छू सांप तो नहीं आधमक जांय। तो जिसकी हम प्रवृत्ति कर रहे हैं उसमें प्रवृत्ति भी न बन पायेगी। जो बात जैसी है उसे वैसा न माननेपर अन्यका धर्म आत्मासे जुड़ता है ऐसा स्वीकार करनेपर किसी भी इष्ट विषयमें हम अपना प्रवर्तन कर रहे हों तो वहाँ अनिष्टके आ धमकनेकी आशंका हो सकती है। जैसे चैतन्य स्वभावमात्र आत्मामें परिणति आ धमकनेकी बात घट गयी फिर तो किसीमें भी परिणति न बन पायेगी अथवा किसीमें इन्द्रियाँ न बन पायेंगी। जब हम सर्प और बिच्छूसे हटनेकी कोशिश कर रहें हों और वहाँ यह बात आ धमके कि इसमें स्त्री पुरुष आ जायें तो निवृत्ति ही क्या करेंगे ? तो किसी विरोधी पदार्थके आ धमकनेसे आ सकनेसे न कहीं प्रवृत्ति बन सकेगी और न कहीं निवृत्ति बन सकेगी। इस कारण यह मानना कि जिस पदार्थमें जिसका स्वरूप निर्बाधरूपसे प्रतीत हो रहा हो वह अन्य सब पदार्थोंके धर्मके परिहारपूर्वक ही होता है। आत्मामें यह ज्ञानस्वभाव ज्ञान व्यवहार अपने एकताके प्रतिभाससे प्रतिभासित हो रहा है, इसमें प्रकृतिका धर्म नहीं है, उसका परिहार है इस आत्मामें, यों एकत्वकी व्यवस्था मानना चाहिए।

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्माको चैतन्यस्वरूप माननेपर चैतन्यविशेषको प्रकृति धर्म मानने की व्यर्थता – और फिर देखिये भैया ! अनुभव सिद्ध जो यह बुद्धि चलती है मैं करता हूँ मैं भोगता हूँ अथवा सुख दुःख आनन्द जितने भी परिणमन चलते हैं अथवा जो कोई शुभ और शुद्ध परिणमन भी होते हैं उन सब पदार्थोंकी तरङ्गोंका इस ज्ञानमें एक व मानना चाहिए, अर्थात् सब यह ज्ञानविलास है। कभी यह अशुद्ध बनता है तो अशुद्ध विलास चलता है शुद्ध बनता है तो शुद्ध विलास हुआ करता है। तो आत्माके इस ज्ञानस्वरूपमें कोई बाधा नहीं आती। कोई भ्रम भी नहीं है कि कोई यों कह दे कि जैसे कभी कभी आँखसे दो चन्द्रमा पास पास दिखने लगते हैं इस तरहसे यहाँ भी कुछ मिथ्यापन नजर आये तो नहीं कह सकते। वह तो स्वसम्वेदन सिद्ध है। मैं हूँ और फिर जब चैतन्य मान लिया आत्मामें तो ये सब चैतन्यकी ही तो विशेषताएँ हैं कि जाना और देखा। जाननेसे अतिरिक्त और चेतनकी बात क्या रह गयी ? केवल उपदेशमात्रसे आगममें लिख दिया, शास्त्रमें बता दिया कि पुरुषका धर्म है चेतन और प्रकृतिका धर्म है ज्ञान तो यों किन्हीं शास्त्रोंमें लिख देने मात्रसे कहीं अन्यथा बातकी तो नहीं कल्पना की जाना चाहिए। वस्तुस्वरूपके विरुद्ध तो बात माननेको न चलना चाहिए। अचेतन पदार्थ स्वयं स्वपरप्रकाशक है फिर उसमें अन्य कहींसे बुद्धि आये और उस बुद्धिका इस चैतन्यात्मक आत्मामें फिर सम्बन्ध बनाना यह बात कैसे घटित होगी ? इससे क्या सिद्ध करना चाहा ? कौन सी नई बात लानेका यत्न किया ?

चैतन्य और बुद्धिको पुरुष एवं प्रकृतिका धर्म माननेमें कल्याणकी खोज - भैया ! अचेतन ज्ञानवादियोंकी ओरसे सोचा जाय कि इससे उन्होंने कल्याण की क्या बात निकाली कि पुरुष तो है चैतन्य स्वरूप और ज्ञान है प्रकृतिका धर्म तथा उसके सम्बन्धसे यह ज्ञाता बनता है, इसमें उन्होंने कौनसा कल्याणका मार्ग निकाला ? जरा सोचो तो सही उनकी ही बुद्धि लेकर। कल्याणका मार्ग यह निकाला गया कि यह समझ आयगी जब सारे अनर्थकी जड़ ज्ञान है, न ज्ञान होवे न कल्पना बने तो न दुःख होवे। कोई टोटा हो गया उसकी खबर मिली, उसका ज्ञान बना, लो दुःख बन गया। कोई खबर न मालूम पड़ती, उस विषयक ज्ञान न हो तो वह तो बड़े सुखमें था। तो सब विडम्बनाओंकी विपत्तियोंकी जड़ ज्ञान है ऐसा माना गया है। तो अब इसे मिटाना चाहिए। यदि वह पुरुषका धर्म मान लिया जाय तो मिटाये मिट न सकेगा। वह स्वरूप बन गया, मैं पुरुष हूँ, मैं आत्मा हूं, मेरा स्वभाव यदि ज्ञान बनेगा तो वह ज्ञान कभी मिट न सकेगा। जैसा कि जैन शासनमें बताया है कि आत्माका स्वरूप राग नहीं है। अगर आत्माका स्वरूप राग बन जायगा तो क्या विडम्बना बनेगी ? राग कभी मिटेगा नहीं और मिटेगा नहीं तो कभी शान्ति आ नहीं सकती। तब जिसकी धारणामें ज्ञान ही अनर्थका मूल बन गया और ज्ञानको मान लें पुरुषका धर्म तब तो कभी मुक्ति हो ही नहीं सकती। और, ज्ञान छूट जाय आत्मासे तो उसका नाम मुक्ति है। क्योंकि ज्ञान है अनर्थकी जड़। ऐसा मान करके यह पक्ष उन्होंने रखा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कि ज्ञान प्रकृतिका धर्म है और प्रकृति पुरुषका जब विवेक किया जाय भेद डाला जाय कि मैं तो चैतन्य मात्र हूँ और ये सारे ज्ञान रागद्वेष विकल्प शरीर इन्द्रियां सब कुछ प्रकृतिके धर्म हैं। इनसे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं। यों भेदविज्ञान बनानेके लिये और एक निर्विकल्प द्रष्टामात्र स्थितिमें पहुंचनेकी धुद्धिसे ज्ञानको प्रकृतिका धर्म माना है। यह है अचेतन ज्ञानवादियोंके मंतव्यमें कल्याणका हल निकालनेका उपाय।

कल्याणके उपायकी जैनशासनमें व्यवस्था – अब जैन सिद्धान्तके अनुसार कल्याणका उपाय देखिये! आत्मा चैतन्यस्वरूप है और जितने भी पदार्थ हैं वे सब सामान्यविशेषात्मक होते हैं। उनमें कोई सामान्यरूप है और कोई विशेषस्वरूप है। खूब दृष्टि पसारकर पदार्थोंको निरख लीजिये! सामान्यविशेषात्मक हुए बिना पदार्थ की सत्ता नहीं रह सकती। इसका सीधा अर्थ यह है कि पदार्थ है और किसी न किसी अवस्थामें है। जो अवस्था है वह है विशेष और जो साधारण अस्तित्व है वह है सामान्य। जो आत्मा सामान्यविशेषात्मक है और आत्मा है चैतन्यस्वभाव। तो फलित अर्थ यह हुआ कि पदार्थ भी सामान्यविशेषात्मक है। अब उस पदार्थमें जो सामान्य वृत्ति है वह तो है दर्शन और जो विशेष वृत्ति है वह है ज्ञान। अर्थात् जो कुछ विश्वकी जानकारी वन रही है वह तो है चेतन पदार्थका विशेष विकास और जो अपने आपको चेतनेकी वृत्ति बना रहे हैं वह है सामान्यविलास। तो उस ज्ञानसे अनर्थ नहीं होता, किन्तु उपाधिके सम्वन्धसे जब रागद्वेष विकार उत्पन्न होते हैं तब उन विकारोंसे आपत्ति आती है और उस आपत्तिके समय अर्थात् रागादिक विकार होनेके समय ज्ञान अपनी विशुद्ध वृत्तिमें नहीं रह पाता और विकल्पोंरूप बन जाता है। उन्हीं विकल्पोंको लेकर अचेतनज्ञानवादी यह मन्तव्य रख रहे हैं कि सब अनर्थ ज्ञानसे हैं। पर अनर्थ ज्ञानसे नहीं है, अनर्थ है रागादिक विकारोंसे। उन रागादिक विकारोंसे छुटकारा पानेका नाम मोक्ष है।

ज्ञानको अचेतन माननेपर अर्थव्यवस्थाका अभाव – यह निर्णय रखना कि आत्मा ज्ञानस्वभावात्मक है, ज्ञान चैतन्यस्वरूप है, अचेतन नहीं है। और भी इस सम्बन्धमें सोचिये कि यदि ज्ञानको अचेतन मान लिया जाय तो वह विशेषकी व्यबस्था कैसे बनाये? यह पदार्थ अमुक है यह अमुक है ऐसा ज्ञानमें प्रमाणपना कैसे आयगा क्योंकि वह अचेतन है। यह चौकी अचेतन है तो यह चौकी क्या यह व्यवस्था बना लेती हैं कि यह पुस्तक है यह कमण्डल है, यह चटाई है? नहीं बनाता। अचेतन है ऐसी व्यवस्था बनानेका यह कोई कारण नहीं है। शायद यह कहो कि ज्ञान अचेतन तो जरूर है पर उसमें पदार्थका आकार जो आता है उस आकारसे व्यवस्था बन जायगी ज्ञानमें अभिमुख स्थित पदार्थका आकार आयगा यह कहेंगे कि यह ज्ञान इस पदार्थको जानता है जिसका आकार आया उसके जाननेकी बात कह दी जायगी। यह भी बात अयुक्त है क्योंकि यदि अचेतन आकारवान होनेके कारण अर्थकी व्यवस्था करें तो प्रथम

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो यह सम्भव नहीं है। किसी भी अचेतन पदार्थमें किन्हीं पदार्थोंका आकार आये और उससे व्यवस्था करे यह नहीं देखा जाता। एक दर्पणका ही दृष्टान्त ले लो, अनेक पदार्थोंका आकार आता है, पर क्या दर्पण यह व्यवस्था कर सकता है कि यह अमुक चीज है यह अमुक चीज है ? तो अचेतन जो होगा उसमें आकार भी आ जाय तो पदार्थकी व्यवस्था न कर सकेगा।

अन्त:करणत्व और पुरुषोपभोगहेतुत्वसे भी अचेतन ज्ञानमें व्यवस्था का अभाव—यदि यह कहोगे कि इस बुद्धिमें दो विशेषताएँ हैं एक तो यह अन्त:करण है, भीतरका साधन है, आन्तरिक इन्द्रिय है और दूसरे यह इस पुरुषको अनुभव कराने की निकटता लानेका कारण है इस बुद्धिके प्रसादसे यह आत्मा किसी भी पदार्थके अनुभवमें आ लेता है तो आत्माको अनुभव निकट ले जानेमें कारण बुद्धि है, इस कारणसे उस बुद्धिमें व्यवस्था बन जायगी जाननेकी। कहते हैं कि यह भी ठीक नहीं है क्योंकि अन्त: करण तो मन भी है पर मन जाननेका काम नहीं करता। उनके सिद्धान्तमें जाननेका काम करने वाली है बुद्धि। मन जानता नहीं है मन रागद्वेषादिक उत्पन्न करनेमें कारण है। जैसे कि आंज भी प्रसिद्ध है कि दिल और दिमाग दो चीजें हैं—दिमाग जाननेका काम करता है और दिल रागद्वेष करनेका काम करता है। तो यों अन्त:करणपना तो मनमें भी आ गया और आत्माको किसी विषयके अनुभव कराने के निकट ले जाये यह बात तो इन्द्रियमें भी है। तब फिर मन और इन्द्रिय भी ज्ञान बन जायेंगा। तो अन्त:करणके कारण भी बुद्धिका सम्बन्ध जाननेसे नहीं बन सकता।

अन्त:करणकी प्रत्यक्षता बिना अन्त:करणसे अर्थव्यवस्थाका अभाव—शायद यह कहो कि अन्त: करणके बिना आत्मा पदार्थको नहीं जानता तो फिर अन्त:-करणकी भी प्रत्यक्षता कैसे हो ? यह अन्त:करण है यह जाने बिना। अन्त:करणमें जो आया है उसका ज्ञान नहीं हो सकता। भला दर्पणके जाने बिना दर्पणमें जो चीज आयी है उसका ज्ञान कैसे कर सके। दर्पणको औंधा धर दो दर्पण करदे आप लोगों के सामने और उसके पीछे हम बैठ जायें तो हम दर्पणमें प्रतिबिम्बित हुए पदार्थको बता सकेंगे क्या ? दर्पणमें क्या प्रतिबिम्ब आया है वह तब समझा जा सकता है जब हम दर्पणको भी जान रहे हों। जैसे ज्ञानमें क्या चीज हुई है, ज्ञानने क्या जाना है इस बातको हम तब जान सकते जब हम ज्ञानको जान रहे हों। तो यों यदि अन्त:करण जानता है तो अन्त:करणकी भी तो प्रत्यक्षता होनी चाहिए। उसका ज्ञान किस प्रकार होगा ? यदि दूसरे अन्त:करणसे प्रथम अन्त:करणका ज्ञान मानो तो उसका ज्ञान फिर तीसरे अन्त:करणसे। कहीं व्यवस्था न बनेगी। यदि कहें कि इस अन्त:करणको हम जानते नहीं फिर भी अन्त:करणका प्रतिबिम्ब आये बिना भी इसका प्रत्यक्ष हो जाय तो पदार्थका प्रत्यक्ष सीधा क्यों नहीं मान लेते ? बुद्धि मानें फिर अन्त:करणका माध्यम मानें फिर ये सब आत्माको सौंपें तब आत्मा जाने इस प्रकारका व्यर्थ व्यायाम करने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

से क्या याभ ? सीधीसी बात है कि आत्मा ज्ञानरूप है। यह ज्ञान आत्माको जानता है और परको जानता है।

विषयाकारधारितासे अर्थव्यवस्थाका अभाव – देखिये अपने आपको जाने बिना परका जानना बन नहीं सकता। जैसे दर्पणके जाने बिना दर्पणमें क्या झलक है क्या प्रतिबिम्ब आया है यह ज्ञान नहीं बन सकता। इस प्रकार ज्ञान चेतन है और वह स्वपरप्रकाशक है। उसे स्वरूपसे स्वपर प्रकाशक यों माने विना बुद्धिकी कल्पना करनेपर बुद्धिमें विषयोंका आकार आ जाय यह बात बन ही नहीं सकती। क्या पदार्थ का आकार इस बुद्धिमें आ जाता है। विषयोंका आकार बुद्धिमें नहीं आ सकता क्यों कि बुद्धि अमूर्त है और ये विषय मूर्त हैं। मूर्तका अमूर्तमें प्रतिबिम्ब नहीं बन सकता। जैसे दर्पणमें अनेक पदार्थोंका प्रतिबिम्ब बन गया, लो बन गया, दर्पण भी मूर्विक है और जिन पदार्थोंका प्रतिबिम्ब आया है वे पदार्थ भी मूर्तिक हैं। मूर्तका मूर्तमें प्रतिबिम्ब हो जायगा पर ज्ञान तो अमूर्त है उसमें पदार्थका आकार प्रतिबिम्ब कैसे आ जायगा। बुद्धि विषयोंके आकारको नहीं रख सकती क्योंकि वह अमूर्त है। जैसे आकाशके स्वरूपमें पदार्थोंका आकार नहीं आ सकता क्योंकि आकाश अमूर्तिक है। जो विषयोंका आकार धारण कर सके, पदार्थोंका प्रतिबिम्ब ग्रहण कर सकें वे सब मूर्तिक हुआ करते हैं। जैसे दर्पण आदिक।

ज्ञानको मूर्त माननेपर इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष होनेका प्रसङ्ग – देखिये सभी लोगोंने बुद्धिको अमूर्त माना है। यदि ज्ञान अमूर्त न हो, मूर्तिक हो तो इन इन्द्रियोंके द्वारा भी उसका परिज्ञान हो जाना चाहिए। जो जो पदार्थ मूर्तिक हैं वे इन्द्रियके द्वारा परिज्ञात हो सकते हैं जैसे दर्पण आदिक। शायद यह कहो कि बुद्धि तो अत्यन्त सूक्ष्म है इस कारण बुद्धिका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। तो बुद्धिका प्रत्यक्ष नहीं हो पाया तो बुद्धिमें आये हुए पदार्थका भी प्रत्यक्ष नहीं हो सका। मूर्त पदार्थ तो इन्द्रिय द्वारा सम्विदित हुआ करते हैं। ये सब पदार्थ ये सब अचेतन स्वरूप रखते हैं। यह मैं आत्मा हूँ, मैं चैतन्यस्वरूप रखता हूँ, ज्ञान चैतन्यस्वरूप है, अचेतन स्वरूप नहीं है।

पदार्थोंकी प्रतिव्यक्तिगतता – लोकमें पदार्थोंकी व्यवस्था पुरुष और प्रकृति के रूपमें नहीं है किन्तु ६ द्रव्य जातियोंके रूपमें हैं। जाति इस विधिसे बनती है कि ऐसा कोई धर्म निरखा जाय जिससे उस जातिका कोई पदार्थ छूटे नहीं और अन्य पदार्थोंका कोई पदार्थ आये नहीं उस पदार्थसे जातिकी व्यवस्था बनती है। अस्तित्व की दृष्टिसे सर्व पदार्थ सत्मात्र हैं लेकिन यहाँ तो हमें प्रत्यक्ष दिख रहा है कि सर्व पदार्थ एक सत्रूप नहीं है क्योंकि सब यदि एक सत्रूप हों तो किसी भी पदार्थका जो भी परिणमन बने वही सबका बने। जो एक चीज होती है उसमें एक ही परिणमन

होता है भिन्न भिन्न परिणमन नहीं। ये सब पदार्थ एक सत्‌रूप होते हैं तो परिणमन न्यारे न्यारे नहीं होना चाहिए, किन्तु तथ्य यह है कि अणु अणुमें प्रत्येक जीवमें अपने अपने जुदे जुदे अनुभवन हैं, परिणमन हैं इस न्यायसे जितने परिणमन होंगे उतने ही पदार्थ होंगे यहाँ भेद दृष्टिसे एक पदार्थमें अनेक गुणोंके परिणमन नहीं दिखते किन्तु जैसे वस्तु अद्वैत है ऐसे ही पर्याय भी अद्वैत है। इसकी जो परिणति हो रही है वह एक हो रही है। अब दूसरे समयमें परिणति हुई वह भी कोई एक है। यों प्रति समय में हमारी जो भी परिणति होती है वह एक होती है। हम उसे समझानेके लिये भेद करते हैं लो यह ज्ञान पर्याय है यह दर्शन पर्याय है यह चारित्र पर्याय है यह आनन्दकी पर्याय है, यों भेद डालते हैं पर यहाँ जैसा यह मैं आत्मा एक हूं, मेरा स्वभाव एक है, मेरी पर्याय भी एक है, पर्याय प्रति समयमें नई नई होती है यों जितनी परिणतियां होंगी उतने पदार्थ हुए, उनमें कितनी जातियां हो सकती उन्हें अब आप समझिये।

पदार्थोंकी छह जातियां - यों अनन्त तो जीव हुए क्योंकि सबका अनुभव अपनेमें जुदा जुदा है अनन्त अणु हुए और एक धर्म द्रव्य एक अधर्म द्रव्य एक आकाश द्रव्य और असंख्यात काल द्रव्य हुए। जीव और पुद्‌गलका स्वरूप स्पष्ट है। जो चेतन हो सो जीव, जो मूर्त हो सो पुद्‌गल। जो जीव पुद्‌गलके गमनका कारण हो सो धर्म द्रव्य। जो जीव पुद्‌गलके ठहरनेका कारण हो वह अधर्म द्रव्य। जो जीव पुद्‌गल आदिक सब पदार्थोंको स्थान देनेका कारण हो, सो आकाश है और सभी पदार्थोंके परिणमनका हेतु हो सो काल। अब इन लक्षणोंसे समग्र द्रव्य ६ जातिमें विभक्त हुए। उनमेंसे जीव पुद्‌गलमें ही विपरीत परिणति हो सकती है शेष द्रव्यमें नहीं। तो जीव की बिभाव परिणतिमें, विपरीत परिणमनमें पुद्‌गल उपाधि कारण पड़ता है, वही पुद्‌गल है प्रकृति। प्रकृतिका सम्बन्ध होनेसे आत्मामें विकार उत्पन्न होते हैं। उपाधि का सम्बन्ध हटे, विकार दूर हों फिर यह शुद्ध ज्ञानरूप रह जाता है। वही आत्माका निर्वाण है और यों ही सबसे न्यारा ज्ञानमात्र अपनेको निरखनेमें निर्वाणका मार्ग मिलता है।

ज्ञानकी अर्थाकारताका निराकरण—अचेतनज्ञानवादी अर्थात् जो ज्ञानको अचेतन मानते हैं और प्रकृतिका धर्म समझते हैं उनका यह एक अन्तिमत कथा कि ज्ञानमें इन पदार्थोंका आकार आता है। जैसे दर्पणमें पदार्थोंका आकार झलकता है और आकार झलकनेके कारण पदार्थोंकी व्यवस्था बनती है कि इस ज्ञानने इस पदार्थको जाना और इस प्रकार जब ज्ञानद्वारा पदार्थके जाननेकी व्यवस्था बन गयी तो ज्ञानको अचेतन बनाये रहनेकी पुष्टि हो गयी ऐसा उनका अन्तिम तर्क था। उसका भी विस्तार पूर्वक निराकरण किया। अब उस ही निराकरणसे क्षणिकवादका यह सिद्धान्त भीं निराकृत हो जाता है कि ज्ञानमें प्रमाणता पदार्थका आकार माननेसे हुआ करती है। इस सिद्धान्तको बौद्ध लोग मानते हैं। इसमें भी उनका मूल मन्तव्य यह होगा कि इन

पदार्थोंका आकार ज्ञानमें नहीं आता, किन्तु यह ज्ञान इन इन पदार्थोंके आकाररूपमें बनता जाता है और इन्हींमें स्थूल दृष्टि वाले यह भी कहते हैं कि जो पदार्थ है इनका आक र ज्ञानमें आता है। खैर, ये तीन बातें युक्तिपर उतरती नहीं हैं इस बातका वर्णन करेंगे।

ज्ञानकी अर्थाकारताकी अप्रतति—ज्ञानकी अर्थाकारताका प्रथम तो प्रत्यक्ष से ही विरोध है। जैसे ये पदार्थ दर्पणमें प्रतिबिम्वत होते हैं दर्पणमें एक गोल-मटोल चौकोर आकार आ जाता हैं इस तरह ज्ञानमें इन पदार्थोंका गोल मटोल आकार आता नहीं है किन्तु ज्ञानमें ही ऐसी खूबी है कि उस पदार्थको जैसा कि वह आकार वाला है उस तरह जान लेते हैं ऐसा ज्ञानका स्वभाव है और यही ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध है। प्रत्येक पुरुष इस ही प्रकारसे घट आदिक पदार्थोंको जानते हैं कि मैं खूब घटको जान रहा हूँ, पर घट आदिकका आकार ज्ञानमें आये और फिर भी यह उस आकारको निरखे फिर उसे जाने इस तरहकी बात नहीं बनती। जैसे कि दर्पणमें किसी पदार्थका आकार आता है और फिर हम दर्पणको देखते हैं तो उसमें आकार जो होता है वह भी ज्ञात होता है। इस तरहका व्यायाम यहाँ नहीं किया जा रहा है किन्तु ज्ञानमें ऐसा ही स्वभाव है कि वह जो कुछ सत् हो, समस्त सत्को जान ले अपने स्वभावसे।

ज्ञानको अर्थाकार माननेपर दूर निकटादिव्यवहारका उच्छेद—दूसरा दोष यह आता है अर्थाकार ज्ञानवादमें कि यदि ज्ञान पदार्थोंका आकार धारण करे और फिर जाने तो ज्ञान यह न समझ सकेगा कि यह पदार्थ निकट है और यह पदार्थ दूर है। जैसे यह चौकी पास है, यह मेरी भुजा मेरे निकट है और वे किवाड़ दूर हैं ऐसा ज्ञात फिर नहीं हो सकेगा। तो वह पदार्थोंका आकार ज्ञानमें आये और फिर इस पद्धतिसे जाने यह नहीं हो सकता। क्योंकि सभी पदार्थोंका आकार ज्ञानमें आया आया है वह सब आकार हमारे ज्ञानके ही समीप है फिर हम जान रहे हैं इस ही आकारको जो कि हमारे ज्ञानमें झलकता है फिर कैसे हम यह बता सकें कि यह चौकी निकट है और किवाड़ दूर हैं। जैसे दर्पणमें भी जितनी चीजोंका आकार आ जाता है उस आकारमें हम दर्पणको देखकर यह न बता सकेंगे कि यह चीज दूरकी है और यह चीज पासकी है। क्योंकि दर्पणमें आकार आ गया और वह एक समतलपर आ गया। जितना दर्पण है उसमें ही तो आया है। दर्पणमें आये हुए प्रतिबिम्बको देखकर हम यह विभाग न कर सकेंगे कि जिसका यह प्रतिबिम्ब हैं वह तो बहुत दूर है और जिसका यह प्रतिबिम्ब है वह निकट है अथवा अमुक चीज दूर है अमुक चीज निकट है, ऐसे ही ज्ञानमें यदि पदार्थोंका आकार आ जाय और फिर यहाँ आकार झलकनेसे प्रतिबिम्ब होनेसे बननेसे हम पदार्थोंको जानें तो बतलावो कौनसी युक्ति है जिससे यह समझ सकें कि यह पदार्थ निकट है और यह पदार्थ दूर है। जो प्रतिबिम्ब हुआ है। जो आकार आया है वह तो ज्ञानके स्वरूपमें आया। ज्ञानसे अभिन्न है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

जितने भी प्रतिबिम्ब हुए हैं वे सब ज्ञानमें ही आ गए हैं। ऐसा अपनेको अभिन्न आकारके या स्वरूपके अनुभव करनेपर, जाना जानेपर दूर और निकटका व्यवहार नहीं बन सकता पर है तो नहीं दूर और निकटके व्यवहारका उच्छेद। हम जानते तो हैं कि यह पर्वत दूर है, यह अमुक चीज दूर है इस प्रकारका व्यवहार बराबर सबको बिना बाधा के मालूम हो रहा है। तो दूर और निकटका व्यवहार अन्यथा बन नहीं सकता था अतएव यह मानना चाहिए कि ज्ञान निराकार ही होता है।

ज्ञानकी साकारताका मर्म – इस प्रसङ्गमें थोड़ी जैन सिद्धान्तकी भी एक बात समझ लीजिये! जैनदर्शनमें ज्ञानको साकार कहा है और दर्शनको निराकार कहा है। लेकिन यहाँ साका का अर्थ यह नहीं है कि जो पदार्थ हैं उनका गोल चौकोर आकार ज्ञानमें प्रतिविम्बित होता है। आकारका अर्थ है विकल्प और विकल्पका अर्थ है अर्थग्रहण। पदार्थका जो जानन होता है, पदार्थोंके सम्बन्धमें जो जानकारी होती है, रूपक बनता है उसका कोई नक्शा समझमें आता है वह है आकार। उस आकार सहित ज्ञान है न कि ज्ञानमें इन पदार्थोंका आकार आया करता हो। और, जहाँ दर्शनको निराकार कहा है उसका अर्थ यह है कि दर्शनमें इन पदार्थोंका जानन नहीं होता। इन पदार्थोंका आकार मुद्रा ये सब ज्ञात नहीं होते और वह दर्शन केवल अपने अभिन्न आधारभूत ज्ञानवान अपनेको चेतता रहता है।

दर्शन ज्ञानके उपयोगकी छद्मस्थोंमें क्रमशः वृत्ति – इस प्रकरणमें एक बात और समझ लीजिए कि प्रत्येक आत्मामें दर्शन ज्ञान, दर्शन ज्ञान इस तरह क्रमसे होता रहता है छद्मस्थ जीवोंमें और केवल ज्ञानियोंमें दर्शन ज्ञान एक साथ होते हैं। अब यहाँ छद्मस्थ जीवोंमें जो दर्शन ज्ञान क्रमसे होता है उसमें क्या मर्म है? दर्शन ज्ञाप जब ये दोनों गुण हैं और प्रत्येक गुणका परिणमन प्रतिसमय रहना चाहिए तो ज्ञान गुणका परिणमन भी निरन्तर एक समय भी अन्तर डाले बिना बराबर होता रहता है और दर्शन गुणका परिणमन भी निरन्तर एक समयका भी अन्तर किए बिना बराबर होता रहता है तो दर्शन और ज्ञान इन दोनोंका परिणमन संसारी जीवों में भी निरन्तर होता है। पर इसका क्या अर्थ है कि संसारी जीवोंमें दर्शनोपयोग होता फिर ज्ञानोपयोग होता। उसका अर्थ उपयोगसे है। उपयोग शब्द उन परिणमनोंको ग्रहण करनेमें क्रमसे चलता है कि मोहीजन तो यह अनुभव भी नहीं कर पाते कि हम अभी दर्शनकी वृत्तिमें आये थे अब ज्ञानवृत्तिमें चल रहे हैं यह क्रिया हमारी इतनी जल्दी हो जाती है और फिर समझमें नहीं आती है।

मोह वश बाह्य अर्थकी धुनिमें दर्शनवृत्तिकी अविदितता—दर्शन वृत्ति की अविदिततापर एक दृष्टान्त सुनिये – किसी पुरुषको यह कहा गया कि अमुक पहाड़ में एक पारस पत्थर है वह मिल जाये तो जितना चाहे लोहेका सोना बना लो। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उसने सोचा कि अन्य व्यापारोंमें क्यों दिमाग श्रमित करें। उस पारस पत्थरको हम ढूंढ़ निकालें। तो १०–२० गाड़ी पत्थर एक समुद्रके निकट रख लिये और एक लोहे का मोटा डंडा गाड़ लिया अब वह उस ढेरमेंसे एक पत्थर निकाले उठाये और उस लोहेपर मारे और देखे कि यह सोना हुआ कि नहीं हुआ तो उसे समुद्रमें डाल दिया। अब समझिये कि बड़े ढेरमें एक तो था पाषाण पारसका। अब वह क्रम क्रमसे पत्थर उठाता जाय लोहेपर मारता जाय, देखता जाये कि सोना हुआ कि नहीं, यदि नहीं हुआ सोना तो वह उस पत्थरको फेंक दे। इस धुनमें वह ऐसा लग गया कि झट पत्थर उठाये मारे फेंके। इसी बीचमें वह पारस पत्थर भी हाथमें आया, उठाया मारा और फेंका। तो जैसे एक धुन लग गयी उस धुनमें पारस पत्थरको भी उठाया मारा और फेंका ऐसे ही मोहमें इन बाह्य पदार्थोंमें रति होनेसे इस ही इस मायाको जाननेकी धुन लग गयी है। इस धुनमें हम यद्यपि जितना ज्ञान करते हैं उतनी ही बार हममें दर्शन उत्पन्न होते हैं दर्शनोपयोग बनता है लेकिन धुन तो लगी हमारी बाहरमें। उस बाहरके ज्ञान करनेकी धुनमें रहनेसे दर्शनापयोग होता रहता है फिर भी हम उसे पकड़ नहीं पाते। तो वह दर्शन निराकार है और ज्ञान साकार है। इस साकारतासे इस पूर्वपक्षमें कही हुई साकारता अत्यन्त भिन्न है।

आकारवत्तासे ज्ञानकी अप्रमाणता—यहाँपर दोष दिया जा रहा है कि यदि ज्ञानमें इन पदार्थोंका आकार आता है और फिर ज्ञान उसे जानता है तो फिर वहाँ यह दूर है यह निकट है ऐसा व्यवहार न बन सकेगा क्योंकि दर्पणमें, काँचमें इतने अनेक फोटो आती रहती हैं, प्रतिविम्ब होता रहता है, मगर उनको निरखकर हम नहीं समझ पाते तो यह चीज दूरकी है और यह चीज पासकी है इस कारण ज्ञान पदार्थका आकार ग्रहण नहीं करता। पदार्थोंके आकार ग्रहण करनेसे ज्ञानमें प्रमाणता नहीं आती, किन्तु यह ज्ञान अपने ही स्वभावसे, अपनी ही कलासे प्रमाणभूत है।

आकारवान् माननेसे ज्ञानमें जड़ताका प्रसङ्ग—अब और भी दोष सुनिये ! यदि ज्ञान इन पदार्थोंका आकार अपनेमें झलकाये, ग्रहण करे तो क्या दोष होते हैं ? प्रथम तो अपने आपमें यह निश्चय कर लीजिए, चूंकि रूढ़िसे और जल्दी समझनेके लिए यह बात बहुत प्रसिद्ध हो रही है कि ये सब पदार्थ ज्ञानमें झलकते हैं, उस झलकनेका अर्थ जानना मात्र हो तो आपत्ति नहीं है किन्तु यह आकार उस ज्ञान में आया करता है, दर्पणमें जैसे पदार्थ झलकता है, प्रतिविम्बित होता है। इस तरह यह प्रतिविम्बित हो तो इसकी आपत्ति दी जायगी। सुनियेगा ! देखो पदार्थसे उत्पन्न होने वाला ज्ञान जिस पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस पदार्थका आकार ग्रहण करता है। ऐसा है क्षणिकवादियोंका सिद्धान्त। इस सिद्धान्तमें उन्होंने दो बातें मानी हैं कि ज्ञान उत्पन्न भी पदार्थसे होता है और उस पदार्थका आकार भी ज्ञानमें आता है। तो पदार्थसे उत्पन्न हुआ यह ज्ञान होनेमें पदार्थका नीले रूपका आकार बना है, इस तरह

पदार्थकी जड़ताका आकार बनता है या नहीं ? ज्ञानने यह जाना कि यह चौकी है तो इस ज्ञानमें चौकीका आकार आया है तो यह तो बतावो कि जैसा चौकीका आकार ज्ञानमें आया है तो चौकीमें जैसा आकार है वैसे ही जड़पना भी है। तो नीलादि रूप का आकार ही आया या जड़रूपताका आकार आया ? यह पूछा जा रहा है क्योंकि पदार्थ तो रूप भी है, जड़ भी है। तो जैसे पदार्थका रूप रङ्ग आकार ज्ञानमें आया है क्या उसी प्रकार इन पदार्थोंका जो अचेतनपना है जड़पना है वह भी ज्ञानमें आया कि नहीं आया आकाररूपसे ? यदि कहोगे कि हाँ, जड़ताका भी अनुकरण ज्ञानने किया। जैसे नील रूपका या गोलपनेका अनुकरण ज्ञानने किया इसी प्रकार ज्ञानने जड़ताका भी अनुकरण किया। इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान भी जड़ हो गया। तब पदार्थोंकी जड़ताका ज्ञान किया याने अनुकरण किया, जड़ताको आत्मसात् किया और आकार हो जाता है तन्मय तो इसका अर्थ है कि ज्ञान भी जड़ बन गया।

जड़ताके अननुकरणमें नील रूपताका भी अननुकरण—यदि कहो कि नहीं। जड़ताका अनुकरण ज्ञानने नहीं किया। जड़ताका आकार ज्ञानने नहीं लिया तो जड़ताका ग्रहण कैसे होगा ? फिर जड़ताका ज्ञान कैसे होगा कि यह पदार्थ जड़ है। जैसे यह पदार्थ नीला है यह ज्ञान जब उत्पन्न होता है तब नील नीलका आकार बना ज्ञानमें। इसी तरह जड़रूपका आकार ज्ञानमें बना नहीं। फिर यह पदार्थ जड़ है इसके निर्णय होनेका कारण क्या है ? यदि जड़ताका ग्रहण नहीं हो रहा है तो नीलाकारका भी ग्रहण नहीं हो रहा है क्योंकि वह नील आदिकरूप और जड़ता, न्यारी न्यारी जगह तो नहीं हैं। वह पदार्थ ही ऐसा है कि वही जड़ है वही नीला है यही और ढंग वाला है इस चौकीकी जड़ताका यदि हमें ज्ञान नहीं हो रहा है तो इसका अर्थ है कि हमें कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ जो बात चौकीमें हैं तो एक भी ज्ञानमें नहीं आ सका क्योंकि ये न्यारे न्यारे तो हैं नहीं। यदि हठ करोगे कि हम चौकीके बारेमें जड़ताका तो ज्ञान नहीं करते, उसका तो अनुकरण नहीं करते और नीलरूपका आकार बनता हैं ऐसा तो फिर जड़तामें और नील रूपतामें भेद हो जायगा, अथवा हमें अनेकान्त मानना होगा कि इन पदार्थोंको जानने पर भी हम इनकी जड़ताको नहीं जानते नील रूपताको जानते अर्थात् जड़ताके ग्रहण करने याने ग्रहणमें आनेका स्वभाव नहीं है और नील रूपताका ग्रहणमें आनेका स्वभाव है। एक दोष हुआ। इससे यह जानना कि पदार्थका आकार ज्ञानमें नहीं झलकता। ज्ञान ही स्वयं पदार्थको जानता रहता है।

जड़ताके अग्रहणमें जड़ताकी अप्रतीतिका प्रसंग—और मान लो ऐसा कि इस चौकीमेंसे नील रूपताका तो इसने ग्रहण कर लिया और जड़ताका ग्रहण नहीं किया तो फिर हम यह कैसे कहेंगे कि यह जड़ता इस चौकी है ? यह जड़ता इन नीलोंकी है क्योंकि जड़ता ज्ञानमें आयी नहीं है और यदि जड़ताके ज्ञानमें न आनेपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भी अर्थात् नील रूपताका तो ग्रहण हो यह नीला है ऐसा तो ज्ञानमें आये और यह जड़ है यह ज्ञानमें न आये तो जड़ता तो हुई अगृहीत, वह ज्ञानमें न आ सकेगी और नीलरूपता हो गई गृहीत, तो अगृहीत यदि बन जाय जड़ता इस गृहीतमें तो फिर भी अन्य चीज कुछ भी ग्रहणमें आ सकेगी किसी भी गृहीतमें अगृहीत कुछ भी एकदम ज्ञानमें आ जाय, पर ऐसा होता है क्या ?

ज्ञानकी स्वपरव्यवसायितामें निरापदता – भैया ! सीधी सी तो बात थी कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञानका स्वभाव जानना है, पर वर्तमान परिस्थिति में इस ज्ञानपर कुछ आवरण है जिस आवरणकी वजहसे सबको नहीं जानता। जब सबको नहीं जान पाता तो इसकी जितनी योग्यता बन सकी उस योग्यताके अनुसार पदार्थको जानता है और वह ज्ञान अपने आपका प्रकाशक है और परका प्रकाशक है। यह जितना छेड़छाड़ चल रहा है वह इस बातपर चल रहा है कि प्रमाणके लक्षणमें ज्ञानको स्वव्यवसायी कहा है। ज्ञान स्वपरप्रकाशात्मक है, जैसे दर्पण स्वपरप्रकाशक है और परपदार्थको भी प्रकाशित करता है इसी तरह यह ज्ञान भी अपने आपका निर्णय करता है और पर पदार्थोंका भी निश्चय करता है।

प्रकृतिवाद और क्षणवादमें साकार ज्ञानका मूलरूप ज्ञानकी स्वपर-व्यवसायिताके विरुद्ध प्रकृतिवादी यह कह रहे थे कि नहीं, ज्ञान स्वप्रकाशक नहीं होता वह तो अचेतन प्रकृतिका धर्म है उस प्रसङ्गकी बात चलते–चलते यहाँ तक कहना पड़ा अचेतन ज्ञानवादियोंको कि इस ज्ञानमें पदार्थका आकार आया करता है उससे यह ज्ञान पदार्थोंकी व्यवस्था बनाता है कि यह अमुक चीज है, यह अमुक चीज है। इसका निराकरण किया जानेपर ही एकदम क्षणिकवादी बोल उठे कि नहीं नहीं, यह बात बिल्कुल ठीक है कि ज्ञानमें पदार्थका आकार आया करता है। ज्ञान आकारवान है साकार है अतएव यह ज्ञान प्रमाण हुआ करता है। उसीके निराकरणमें बात यहाँ तक कही गई कि यदि यह ज्ञान पदार्थोंका आकार लिया करता होता तो जैसे नीले पीले रूपका आकार लेता है इसी प्रकार ये जड़ हैं, पदार्थ हैं उनका भी आकार ले ले और जड़ताका आकार ग्रहण कर लेनेसे यह ज्ञान जड़ बन जायगा। देखिये ज्ञान जड़ बन जायगा। इस तरहकी यह आपत्ति उन अचेतन ज्ञानवादियोंको नहीं दी गई क्योंकि वे तो मानते ही हैं कि ज्ञान जड़ है लेकिन ये क्षणिकवादी ज्ञानको जड़ नहीं मानते। आत्मा है और वह आत्मा केवल ज्ञान क्षणमात्र है। आत्मा कुछ चीज नहीं है। ये निरात्म वादी हैं अर्थात् समय समयके होने वाले ज्ञानको ही आत्मा मानते हैं आत्मा उससे न पहिले था न आगे होगा, जो ज्ञानकी झांकी हो बस इतना ही भर आत्मा है वह झांकी मिट जाती है फिर दूसरा ज्ञान बनता है तो ये सब नये नये आत्मा बनते जाते हैं। आत्मा शाश्वत कुछ चीज नहीं है।

क्षणिकवादमें निरंश अंशका माध्यम – क्षणिकवादमें द्रव्यका अविभागी

खण्ड तत्त्वका माना गया है, क्षेत्रका अविभागी खण्ड, कालका अविभागी खण्ड और भावका अविभागी खण्ड तत्त्व माना गया। खण्ड किये गये, पर वह भौतिक टुकड़ा जिसका दूसरा विभाग न हो सके, उसे तत्त्व माना है। देखो खण्ड दो प्रकारके होते हैं – एक तो व्यापक खण्ड–जैसे आकाश कितना बड़ा अखण्ड है। और दूसरा ऐसा खण्ड जैसे मान लो यह चौकी है, इस चोकीके दो टुकड़े हो सकते हैं ना। फिर उन टुकड़ोंके और टुकड़े बन सकते हैं, पर अन्तमें कोई ऐसा टुकड़ा बने कि जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके तो बतावो वह टुकड़ा अखण्ड है कि नहीं ? वह भी अखण्ड है। तो ऐसा खण्डरूप अखण्डको मानते हैं क्षणिकवादी। तो आत्मामें एक कौनसा खण्ड है ? आत्मा है ज्ञानमात्र। उस खण्डके खण्ड कर दीजिये एक पौन घंटे तक ज्ञानको जाने वह जानन है और आध घण्टे तक जो जाने वह भी एक जानन है और पन्द्रह मिनट तक जाने वह भी एक जानन है. एक समयमें जो जानना है वह भी जानन है। तो इस ज्ञानभावकी पर्यायमें टुकड़े करते जाइये, जो एक समयका जानन है वह खण्डरूप जानन ही जिसका अखण्ड तत्त्व है और ऐसा खण्डरूप जानन ही जिसका पूरा आत्मा है वे क्षणिकवादी यहाँ अपना सिद्धान्त रख रहे हैं कि वह ज्ञान पदार्थका आकार ग्रहण करता है और इसी कारण ज्ञान प्रमाण हुआ करता है। जिस पदार्थसे उत्पन्न हुआ उस ही पदार्थका आकार लिया और उस ही पदार्थको ज्ञानने जाना। इस तरह वे ज्ञानकी व्यवस्था बनाते हैं।

स्वधर्मकी बेसुधपर खेद – देखो भैया ! कभी कभी ऐसा होता है कि हाथ में कोई चीज लिए हैं फिर भी उसे बाहरमें ढूँढते फिरते हैं। जैसे दाहिने हाथमें कोई स्वर्णका टुकड़ा लिए हैं तो कभी कभी ऐसा हो जाता है कि उसे भूल जानेसे उसे बाहरमें ढूँढते फिरते हैं, उस समय सन्दूक खोलकर ढूँढना है तब भी वह बायें हाथसे खोलकर ढूँढता है। कहाँ तो पहिले बायें हाथसे खोलकर ढूँढा करता था। तो इसी प्रकारसे समझ लो हम आप अपने ज्ञानको भूल गए हैं जिसके कारण बाहरमें ज्ञानकी टेर मचाई जा रही है सिद्धान्त बना बनाकर, पर यह एक विडम्बना की बात है। जो हम हैं उस ही की चर्चा है फिर भी हम इस तरह दौड़ दौड़कर अपनेको खोजते फिर रहे हैं। यदि यह आत्मा परके विकल्प तोड़कर पूर्ण विश्वाससे अपने आपमें रह ले तो ये सारे रहस्य उसे अपने आप विदित हो जाते हैं। ज्ञान स्वपर व्यवसायी है और ज्ञानमें पदार्थका आकार नहीं आता किन्तु ज्ञान अपनी पद्धतिसे पदार्थोंको जानता रहता है।

गृहीत नीलाकारमें अगृहीत जड़ताका ज्ञान माननेपर एकत्वकी व्यवस्थाका अभाव तथ्य तो यह है कि ज्ञान पदार्थका आकार ग्रहण किए बिना अपनी ही सामर्थ्यसे पदार्थको जानता है किन्तु क्षणिकवादी यहाँ यह सिद्धान्त रख रहे हैं कि पदार्थसे ही तो ज्ञान उत्पन्न होता है और पदार्थके आकारको वह धारण करता है तो

यह दोष दिया गया इसपर कि यदि ज्ञान पदार्थके आकारको धारण करे तो जैसे इन नील आदिक पदार्थोंको जाना तो उन पदार्थोंमें जड़ता भी है तो नील आदिकको जाना इसी भाँति क्या जड़ताका भी आकार लेते या नहीं ? यदि जड़ताका आकार लें तो ज्ञान जड़ हो जायगा और जड़ताका आकार न लें और जड़ताका ज्ञान कर लें तो आकार उसने लिया, ग्रहण किया और कुछ विना ग्रहण किए को भी जाना। तो यों हम कुछ भी जान लें उसमें सारा तीन लोक जाननेमें आ पड़ेगा, कोई व्यवस्था न रहे और फिर एक पदार्थका ज्ञान कुछ नहीं रहा। पदार्थके एकत्वका साधन तो एक ज्ञान करना है। एकका ज्ञान हुआ तो जान लिया कि पदार्थका इतना स्वरूप है, मगर यहाँ तो अग्रहीत भी ज्ञानमें आने लगा। जैसे जड़ता सारी अग्रहीत होकर भी ज्ञानमें आ बैठी ऐसे ही सारा अग्रहीत पिण्ड ज्ञानमें आ धमकेगा। इस कारण सीधा मान लो, ज्ञान है। जाननेका काम रखता है सो अपनी योग्यतासे उसने पदार्थको जान लिया।

एकत्र अतदाकारताकी स्वीकृतिमें सर्वत्र अतदाकारताका औचित्य— यदि यह कहो कि भाई जैसे नीलाकारको ज्ञानने जाना ऐसे ही ज्ञानमें जड़ताको भी जाना पर जड़ताको अतदाकार ज्ञानसे जाना। नील आदिक पदार्थोंको तो तदाकार ज्ञानसे जाना जैसा पदार्थ है वैसा आकार ज्ञानमें आ गया पर जड़ताको अतदाकार ज्ञानसे जाना। अर्थात् ज्ञान जड़ताका रूपक नहीं रखता और जान जाता है तब फिर तो जैसे जड़ताको अतदाकार ज्ञानसे जान लिया ऐसे ही नील आदिक पदार्थोंको भी अतदाकार ज्ञानसे जान लेवें क्योंकि जो पदार्थ जिससे अर्थान्तरभूत है वह तदात्मक रूपसे ग्रहणमें नहीं आता। जैसे ज्ञानसे नील आदिक पदार्थोंकी जड़ता न्यारी चीज है ना इसलिये ज्ञानने जड़ताका आकार ग्रहण नहीं किया इसी प्रकार नीलादिक पदार्थ भी भिन्न है सो इसका भी आकार ज्ञान ग्रहण न करे।

क्षणिकवादमें दृश्य पदार्थोंका रूपक इस प्रसंगमें थोड़ी एक विशेष बात और जान लीजिये। क्षणिकवादमें ये पदार्थ कुछ नहीं हैं चौकी तख्त, चटाई ये कोई पदार्थ नहीं हैं किन्तु क्या है। नीला पीला बस ये पदार्थ हैं। क्षणिकवादमें एकको कुतर कुतरकर जो कोई खण्ड हो जाय, जिसका कोई और खण्ड न किया जा सके वह ही तत्त्व माना गया है। यह पदार्थ कुछ चीज नहीं है, पिण्ड नहीं माना गया है क्षणिकवादमें किन्तु जैसे कालकी अपेक्षा एक समयकी बात मानी है ऐसे ही भावकी अपेक्षा चेतनमें तो ज्ञान क्षणमात्र है और यह पुद्गल पदार्थमें नील पीतादि मात्र रूप माने गए हैं और कुछ ऐसा लगेगा कि इन पदार्थोंकी अगर खोज करें, कूटकर कुतर कर इसको रगड़कर तो सिवाय इसके और कुछ मिलता ही नहीं है। इन पदार्थोंमें कितना ही हम घिसकर छीलकर जानें तो रूप रूपके सिवाय कुछ नहीं मिलता है अतएव इन पदार्थोंको उन्होंने रूपमात्र समझा। जैसे चैतन्यमात्रका केवल ज्ञान क्षण मात्र समझा और वह भी ज्ञान क्षणमात्र पूर्वापरसे विविक्त।

 http://sahjanandvarnishastra.org/

नीलाकारके अनुकरण व जड़ताके अनुकरणकी अनेक विकल्पोंसे अयुक्तता—इस सिद्धान्तमें ज्ञान नील आदिक आकाररूप बनता है । इस कथनपर यह आपत्ति दी जा रही है कि जैसे नीलाकार जाना वैसे ही पदार्थोंकी जड़ता भी जानी । तो नीलाकार ज्ञान बन गया तो जड़ाकार भी बन जायगा । तो यह बात भी नहीं बन सकती कि चलो जड़ता तो अतदाकार ज्ञानसे जान लिया उसका आकार बनाये बिना ही जान लें और नील आदिकका आकार बनाकर जानें । यह बात भी नहीं बनती और फिर यह भी बतलावो कि कि किसी पदार्थको जाने तो नील आदिक आकार बन गया ज्ञानका तो नीलाकार जो ज्ञान है क्या वह ही ज्ञान जड़ताको जानता है या दूसरा ज्ञान जानता है ? किसी पदार्थको निरखकर जो उसके रूपका आकार बना तो रूपाकार जो ज्ञान है क्या वही ज्ञान जड़ताको जान लेगा ? या अन्य ज्ञान पदार्थोंकी जड़ताको जानेगा ? यदि कहो कि नीलाकार ज्ञान जड़ताको भी जान लेगा तो यह तो एक अर्द्धजरतीय न्याय हो गया, खिचड़ी जैसा । क्या कि एक पदार्थको ज्ञानने जाना तो नील आदिक तत्त्वको तो स्वात्मभूत बनाकर जाना, उस आकाररूप परिणमकर जाना और जड़ताको अतदाकारसे, उस रूप परिणमे बिना भी जाना । तो यह तो ज्ञानकी द्विविधा बन गयी । यदि कहा कि अन्य ज्ञानसे जड़ता जान गया तो वह ज्ञान भी यदि अतदाकार बनकर जड़ताको जानता है तो उसी प्रकार अतदाकार बनकर नीलाकारको जान लेगा ।

ज्ञानस्वरूपमें व्यवहार और तथ्यविचार—देखिये ! एक साधारणरूपसे हम इन पदार्थोंको जानते हैं तो जाननेके ही साथ ऐसा लगता है अपने आपके चित्तमें, ज्ञानमें कि जो आकार यह है वही आकार यहाँ बन गयाऐसा सीधासा लगता है क्योंकि जानना इस ढंगका होता है और उसमें कल्पनायें बहुत लगायी जा सकती है । कोई यदि शंका करे कि बतलावो कि इतना बड़ा मकान उसका आकार इस जरा से देहमें । रहने वाले ज्ञानमें कैसे आ गया । तो उत्तर दिया जा सकता है कि पेड़का बड़ा रूप एक चार अंगुलके दर्पणमें कैसे आ गया । अर्थात् लगतासा है ऐसा कि जो कुछ ये पदार्थ ज्ञानमें आते है ये सब इसमें आकार बनते हैं फिर ज्ञात होता है ऐसा चूँकि एक जानन बन रहा है ना सो लगता है किन्तु बात यह यों नहीं है कि ज्ञान तो अमूर्त तत्त्व है और ये पदार्थ मूर्त हैं तो मूर्तपदार्थका प्रतिबिम्ब अमूर्तमें कैसे जुड़ेगा । दर्पण मूर्तिक है और उसमें जो पदार्थ झलकते हैं वे भी मूर्तिक हैं और उनके दर्पणमें इस तरहकी योग्यता है कि वे झलक जाते है पर अमूर्त आकाशमें जैसे पदार्थोंके आकार प्रतिबिम्बित नहीं हो सकते हैं इसी प्रकार अमूर्त ज्ञानमें भी पदार्थोंके आकार प्रतिबिम्बित नहीं हो सकते । ज्ञान है, स्वरूप है, कोई पदार्थ किसी जातिका है, सो उसका अर्थ क्रिया उसका काम इस ही ढंगका है कि वह चेता करे, जाना करे यह उसका स्वाभाविक काम है । पदार्थका आकार ज्ञानमें जाये तब ज्ञान जाने ऐसी अपेक्षामें ज्ञानमें नहीं है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भिन्न-भिन्न ज्ञानोंसे नील व जड़ताके ज्ञानमें नीलकी जड़ताके अवगम का अनवकाश— ज्ञान यदि पदार्थाकार बनकर जानता होता तो जड़ताका भी आकार ग्रहण कर लेता और इस प्रकारकी जड़ता ज्ञानमें बन जाती। तथा यह कहना कि ज्ञानान्तरने जड़ताको जाना तो बतलावो कि अन्य ज्ञानने केवल जड़ताको ही जाना या जड़ताकी तरह नील आदिकको भी जाना ? यदि कहो कि उस दूसरे ज्ञानने इन नील आदिक पदार्थोंकी जड़ता ही जानी तो जब केवल जड़ता ही जानी तो हम यह ज्ञान नहीं कर सकते कि यह जड़ता नीलादिकी है, क्योंकि नीलाकार ज्ञानने तो नील पदार्थ पदार्थको जाना और अन्य ज्ञानने जड़ताको जाना। तो दो विषय भिन्न भिन्न ज्ञान द्वारा हो गए। हम यह कैसे जानें कि इन नील पदार्थोंकी यह जड़ता है, इस चौकीकी यह जड़ता है ? चौकी जान गए अन्य ज्ञानसे तो फिर यह हम कैसे सम्बन्ध लगायें कि यह जड़ता इसकी है।

एक वस्तुके अवगममें तदाकारता व अतदाकारता माननेपर अर्द्ध जरतीयता—यदि कहो कि उस अन्य ज्ञानने जड़ताको भी जान लिया व उसी प्रकार नीलाकारको भी जान लिया तो वही अर्द्धजरतीय न्याय हो गया। एकको आकार ले कर जाना और एक को बिना आकार लिए जाना। तो केवल जड़ताके जाननेमें यह सम्बन्ध हम न बना पायेंगे कि यह जड़ता अचेतनता इस पदार्थकी है। यह जड़ता इसकी है, क्या यह प्रतीति हम आद्य ज्ञानसे करें या द्वितीय ज्ञानसे। आद्य ज्ञानने केवल नीलाकारको जाना और द्वितीय ज्ञानने केवल जड़ताको जाना। तो यह इसकी जड़ता है इसका कोई ज्ञान नहीं बना। यदि कहो कि एक कोई ज्ञान और बन बैठेगा जो दोनोंको जान लेगा तो वहाँ भी यह विकल्प आयगा कि एक को आकारसे जाना एकको निराकार होकर जाना तो वही अर्द्धजरतीय ज्ञान बना। कोई व्यवस्थाकी बात नहीं रही। इससे यह मानें कि आकार ग्रहण किए बिना ही ज्ञान जानता है, यह सब ज्ञान स्वव्यवसायी है इस सिद्धान्तकी पुष्टिमें कहा जा रहा है ज्ञानको स्वव्यवसायात्मक न तो ये क्षणिकवादी मान रहे है और न पहिले निरूपित ये अचेतनवादी सांख्य मानते थे, किन्तु जैन दर्शन परिभाषामें ही यह स्पष्ट कर देता है कि ज्ञानवादी है जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय करायें और जो ऐसा ज्ञान है वह निराकार ही होता है। जानन रूप आकार तो है। क्या जाना, उसका रूपक तौ बना है, पर ज्ञानमें पदार्थोंका आकार नहीं आता।

ज्ञानकी निराकारतामें शंका समाधान—अब ज्ञानकी अतदाकारताके विरोधमें शंकाकार अपना मंतव्य रख रहे हैं कि देखो यदि ज्ञानको निराकार मान लोगे तब फिर यह निराकार ज्ञान सारे विश्वका जाननहार बन जायगा, हमारे यहाँ तो यह व्यवस्था रहती है कि जिस पदार्थके आकाररूप ज्ञान बना वह ज्ञान उस पदार्थ को ही जानेगा, सबको न जानेगा पर तुम निराकार ज्ञान मानते हो पदार्थका ज्ञान

http://sahjanandvarnishastra.org/

आका में आता नहीं है तो फिर ऐसा ज्ञान सारे विश्वका जाननहार बन जायगा और फिर जब सब एक साथ जाननमें आया और निराकारने जाना तो यह निकटका पदार्थ है यह दूरका पदार्थ है, यह भूतकालका है यह वर्तमानका है यह सब कोई निर्णय न रहेगा निराकार ज्ञान माननेपर ? यह शंकाकारने अपनी शंका रखी। उत्तरमें आचार्य देव कहते हैं कि भाई ज्ञान तो निराकार है पदार्थका आकार ग्रहण नहीं करता, लेकिन प्रतिनियत सामग्रीका सामर्थ्यसे ज्ञान निराकार होकर भी प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था बनाता है इस बातको आगे विशेषतया खुलासा कहेंगे। भाव यह है कि जैसा साधन मिला हो, उस सब साधनके अनुकूल यह ज्ञान प्रतिनियत अर्थको जान लेता है।

ज्ञानमें प्रतिनियत अर्थके अवगमकी विशेषता प्रतिनियत अर्थके ज्ञानके बाबत यों भी समझो कि ज्ञानका कार्य तो समस्त सत्को जाननेका है, पर ज्ञानपर आवरण पड़ा है कर्मोंका जिसका नाम है ज्ञानावरणकर्म। तो ज्ञानावरण कर्मके जैसे ५ भेद किये — मतिज्ञानावरण, श्रुत ज्ञानावरणादि उसमें मतिज्ञानके आवरणको लो तो जितने मतिज्ञान हो सकते हैं उनमेंसे यदि कुछ मतिज्ञान प्रकट है तो बाकी मतिज्ञानका आवरण है और उससे समस्त अर्थोंके नामपर आप लगा सकते हैं। घट ज्ञानावरण पट ज्ञानावरण। जितने भी पदार्थ है जो मूर्त हैं, जिसे इन्द्रियसे जान सकते हैं उन सबके नाम लगते जायें उतने ज्ञानावरण होते हैं, जितनेका निषेध है और इन्द्रियके साधनकी सामर्थ्य है उतने प्रतिनियत अर्थको ज्ञान जान लेता है। इसमें कोई अव्यवस्था नहीं होती और, जब आपसे भी यह पूछा जायगा आचार्य कह रहे हैं शङ्काकारके प्रति कि यदि आकारको ग्रहण करके ज्ञान जानता है तो नीलाकारका जिस ज्ञानने अनुकरण किया वह स्वयं नीला बन गया तो यों जड़ाकार अथवा इन्द्रिय आदिक आकार यह भी ज्ञान बन जायगा फिर न कारणका भेद रहा और न दूर निकटका भेद रहा यह दोष तुम्हारे भी तो आयगा। जो बात तुम निराकार कहकर दोष देना चाहते हो वह दोष साकारमें भी अवश्य है उसका क्या निराकरण होगा। जैसे कुछ लोग यहाँ बैठे हैं और कुछ पदार्थोंको मानो जान रहे कुछ को नहीं तो यह क्यों हुआ। जैसे तुम कहते हो कि ज्ञान निराकार बनेगा तो सब एक साथ ज्ञानमें आयगा तो यह बात आकारमें भी है सबका आकार क्यों नहीं बन बैठता ज्ञानमें। आकारको करता जाता ज्ञान फिर यह तो बतावो कि सब पदार्थों का आकार ज्ञानमें क्यों नहीं आ जाता। तो वहाँ भी तुम योग्यता ही मानोगे योग्यता ही फिर तुम्हारे लिए शरण है। वही योग्यता यहाँ है निराकार ज्ञान होनेपर भी उसी तरहक योग्यता है।

पूर्वपक्षकार द्वारा ज्ञानमें प्रतिनियत अर्थका ग्रहण करनेका समर्थन व प्रत्युत्तर देखिये शंकाकार भी अपनी युक्तियोंमें बहुत कुछ बल रखता है, इनका कहना है कि जैसे माता,पिताका व्यवहार एक आकार भी एकसा है उनसे जो पुत्र उत्पन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

होता है वह पुत्र या तो माँ की सकलाकार होगा या पिताकी सकलका होगा। तो जैसे आहार काल आदिक समान होनेपर भी माता और पिता इन दोनोंमेंसे किसी भी एक के आकारको पुत्र ग्रहण करता है दूसरेका नहीं। इसी प्रकार इन पदार्थोंके सबके जाननेमें ये चक्षु आदिक कारण है इनकी विशेषता नहीं है मगर इन पदार्थोंमें। यह ज्ञान प्रतिनियत नीलका आकार तो ग्रहण कर लेता है अन्य पदार्थोंका नहीं करता। जैसे पुत्र किसी एकका आकार ले लेता है, दूसरेका नहीं इसी तरह यह ज्ञान भी प्रतिनियत पदार्थोंका आकार रूपमुद्रा इसका तो आकार ले लेता है और अन्य नहीं। पदार्थ पचासों हैं, उनमेंसे किसी पदार्थका आकार ले लिया और अन्यका आकार नहीं लिया यह भाव है अथ तू साकार ज्ञानमें सभी पदार्थोंका आकार क्यों नहीं आ जाता और सभी पदार्थोंको एक साथ ज्ञान क्यों नहीं हो जाता। इस प्रश्नपर उत्तर दे रहे हैं शंकाकार कि जैसे पुत्र माता पितामेंसे किसी एकका ही आकार लेता है इसी तरह इतने पदार्थ होनेपर भी यह ज्ञान किसीका आकार लेता है। तो यह बात तो निराकार ज्ञानमें भी बन सकती है। ज्ञान निराकार होकर भी किसीको जानता है सबको नहीं। यहाँ तो प्रतिनियत सामग्री कारण है। ज्ञानावरणका क्षयोपशम कारण है। तो जैसी योग्यता है, जितना आवरण हटा है। जितना सामर्थ्य पड़ा है उस सामर्थ्यके अनुसार यह ज्ञान पदार्थोंको जानता है और जब समस्त आवरण दूर हो जाते हैं तो यह ज्ञान समस्त पदार्थोंको भी जान लेता है।

ज्ञानका विशुद्ध काम जाननेके साथ-साथ जो यह सोचता है कि यह पदार्थ दूर हैं यह निकट है, यह पदार्थ गुजर गया यह पदार्थ इस समय है यह विकल्प ज्ञान का काम नहीं है, यह कल्पनाका और भूत ज्ञानका काम है। ज्ञानका तो विशुद्ध काम है प्रतिभासमात्र है जो पदार्थ जैसे है उन पदार्थोंको वैसा प्रतिभास लेना ज्ञानका तो यह विशुद्ध काम है फिर उनमें जो हम छोटी बड़ी नाप तौल आदिककी कल्पना बनाते है हम अपने तर्क और अपने रागभावके अनुकूल बनाते हैं। अपनी व्यवहार भाषामें बनाते हैं। यह ज्ञानका विशुद्ध काम तो प्रतिभासमात्र है।

आत्माके विशुद्धस्वरूपके अवगमकी एक योजना--अपने आत्माका विशुद्ध स्वरूप क्या है ? इस समय भी यद्यपि आत्मा मलिन है और अपने उस विशुद्ध स्वरूपके विशुद्ध विकासमें रह नहीं रहा है। विकल्प तर्क विचार रागद्वेष आदिक विकारोंसे तो विडम्बित हो रहा है तिसपर भी हम समझना चाहे कि मेरे ज्ञानका अथवा मेरा विशुद्ध स्वरूप क्या है। तो उसकी तो एक युक्ति है, कसौटी है। वह युक्ति यह है कि ऐसा विचार करनेमें लग जाइए कि यह मैं जो कुछ भी हूँ। केवल मात्र यह मैं होऊँ और हूं भी स्वरसतः हमेशा तो केवल मात्र रहनेपर इस मुझमें क्या स्वरूप बनता है किन्हीं पदार्थोंका सम्बन्ध बननेपर किन्हींमें राग विरोध पहुँचनेपर तो इसके नानारूप बनते हैं। संयोग समागम रागादिक विरोध कोई भी विकार न जगे, कोई

भी उपाधि न आये तो यह मैं आत्मा अपने आपमें किस प्रकार रहता हुआ रहूंगा ऐसी कल्पनाके आधारपर हम यह समझ पायेंगे कि यह मैं आत्मा केवल विशुद्ध प्रतिभास मात्र हूँ। तो जो प्रतिभास है तावन्मात्र तो मैं हूँ और उसके अतिरिक्त जितने विकार हैं, कल्पनाजाल है वे सब मैं नहीं हूँ, वे सब औपाधिक भाव है।

अपने सत्त्वके लिये परकी अनपेक्षा—प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे ही रहा करता है। कोई पदार्थ अपनी सत्ताका किसी अन्य पदार्थकी कृपासे नहीं बनाता या अपने आपके परिणमन स्वभावसे किसीकी अपेक्षा रखकर नहीं बनाता। प्रत्येक पदार्थ सत् है और वह स्वतंत्र रूपसे अपने आपकी ही ओरसे अपने आपके ही कारण सत् है। तो यों अपने आपमें अपने स्वरूपको निरखिये वह स्वरूप एक चैतन्यमात्र मालूम होगा और उस चैतन्यमें जो सामान्य चैतन्य है वह तो स्वभावरूप है और जो चैतन्य विशेष है वह ज्ञानरूप है, वह विशेष भी तर्क विकल्प विचारात्मक नहीं है, किन्तु एक पदार्थ जैसा द्रव्य, गुण, पर्याय रूप है उस प्रकारका जानन बन गया इतना ही वह चेतन विशेष है। इस तरह आत्मा दर्शनात्मक है। ज्ञानात्मक है और वह सब ज्ञान स्वव्यवसायी है और परव्यवसायी भी है इस तरह वही ज्ञान प्रमाण हो सकता है जो ज्ञान अपने आपका भी निर्णय रखता है और अपूर्व अर्थका भी निर्णय रखता है।

प्रतिनियत अर्थके ज्ञानकी व्यवस्थाकी चर्चा—साकार ज्ञानवादियोंने यह दोष उपस्थित किया था कि यदि ज्ञान निराकार है तो उसमें सभी पदार्थोंका एक साथ ज्ञान क्यों नहीं होता ? इसके उत्तरमें प्रतिशङ्का की गई थी कि जब ज्ञान साकार है तो सभी पदार्थोंका आकार ज्ञानमें क्यों नहीं आ जाता ? उसके उत्तरमें साकार ज्ञानवादियोंने यह कहा था कि जैसे माता पिताका समान आहारादिक हैं तो भी पुत्र उत्पन्न होता हैं तो उन दो मेंसे किसी एकका आकार रखता है, ऐसे ही पदार्थ बहुत हैं उपस्थित पर उन सबमें किसी एकका आकार ज्ञान ग्रहण करता सबका नहीं तो प्रत्युत्तरमें कहा गया यही बात तो निराकार ज्ञानमें है। ज्ञानका कार्य यद्यपि सर्वत्र है एक है पर जिस स्वभावसे योग्यतासे ज्ञान नीलका अनुकरण करता है उसी स्वभावसे, उस ही योग्यतासे यद्यपि ज्ञान सर्वत्र अनाकार है तो भी किसी पदार्थको जानता है सबको नहीं जानता। इससे जितने भी दोष दिये जा सकेंगे अन्योन्याश्रय आदिक वे सब साकार ज्ञानमें भी लग सकेंगे। और, दूसरी बात यह तो हुई ज्ञानकी ओरसे बात अब पदार्थोंकी ओरसे सुनिये।

ज्ञानकी अर्थरूपताके मन्तव्यमें सर्वैकवेदनका प्रसंग—ये पदार्थ यदि अपने आकार ज्ञानको सौंपा करते है तो जिस किसी प्रतिनियत पदार्थने ज्ञानको अपना आकार सौंपा याने जिस ज्ञानसे घड़ा जाना जा रहा है तो वहाँ हैं तो सभी पदार्थ पर घड़ेने ही अपना आकार ज्ञानको क्यों सौंप दिया है तो इसी प्रकार सभी वस्तु क्योंकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ज्ञानके कारण तो सभी हैं वे अपना आकार क्यों नहीं सौंप देते। शायद यह कहो कि वस्तुका ऐसा ही सामर्थ्य है कि कोई ही किसी ज्ञानका कारण बनता है सब सबके ज्ञानका कारण नहीं होता। तो इसी तरह यहाँ भी मान लो कोई किसीका ग्राह्य है ग्राहक है, सब नहीं हैं सबके। प्रयोजन यह है कि ज्ञानमें योग्यता माने बिना काम नहीं चल सकता। उपादानभूत तत्त्वकी शक्तिकी प्रमुखतासे ही विवाद निपट सकता है। ज्ञान अर्थाकार नहीं होता अर्थात् ज्ञानमें अर्थका प्रतिविम्ब नहीं है। अर्थके सम्बन्धमें जो जानन हो रहा, विकल्प हो रहा इस ही का नाम साकारता है। दर्पणकी तरह पदार्थ प्रतिविम्बित हो ज्ञानमें और इस कारणसे जाने ऐसा नहीं है।

प्रमाणमें अर्थरूपताकी असंभवता एक अन्य बात यह है कि ज्ञान प्रमाण है। जो प्रमाण होता है उसमें अर्थाकारका अनुकरण नहीं होता। जिस जिसमें अर्थाकारका अनुकरण हो, प्रतिविम्ब हो, झलके वे सब प्रमेय बन सकते हैं। यदि यहाँ भी अर्थका प्रतिविम्ब आ जाय तो यह भी प्रमाण न रहेगा परन्तु ऐसा नहीं है अथवा यह भी नहीं है कि अर्थका प्रतिविम्ब आ जाय और वह प्रमाण भी रहे क्योंकि प्रमाण और प्रमेय ये दोनों जुदी जुदी पद्धतिसे प्रतिभासमें आते हैं। प्रमेय तो बहिर्मुख आकार से प्रतिभासमें आता है, यह है घड़ी। यह है चौकी और ज्ञानप्रमाण अन्तर्मुख आकार से प्रतिभासमें आता है, अतः प्रमाण और प्रमेयमें एक रूपता नहीं हो सकती। ज्ञान प्रमाण है इस कारण ज्ञानमें अर्थका प्रतिविम्ब नहीं आता।

प्रत्यक्षसे ज्ञानकी ज्ञानरूपताकी प्रतीति— अब इस प्रसंगमें ये ज्ञानाद्वैतवादी क्षणिकवादी ज्ञानको अर्थाकार मानने वाले यह बात रख रहे हैं कि भाई प्रत्यक्ष से तो ज्ञानसे अर्थके आकार अनुभवमें आते हैं, बाह्य पदार्थ अध्यक्षसे प्रतिभास नहीं होते। इस सिद्धान्तके कहनेका यह प्रयोजन है कि यह साकार ज्ञानवादी समस्त विश्व को केवल ज्ञानरूप मानता है और वह समस्त विश्व जिस जिस आकारमें है उस उस रूपसे ज्ञान है। विश्व अलग कुछ नहीं है। बाह्य पदार्थ पृथक् कुछ नहीं हैं। जैसे स्वप्नमें अनेक चीजें दिखती हैं पर वहाँ चीजें कुछ नहीं हैं केवल एक अपना ज्ञान उस तरहका बन रहा है इसी तरह जागृत अवस्थामें भी जब कि इन्द्रियोंको ऐसा लगा रहे हैं यह भी एक स्वप्न अवस्थाकी तरह है। मोह नशा है यह कुछ भी नहीं है। सिर्फ ज्ञानकी ही इस प्रकारकी तरंग उठती है और भिन्न भिन्न रूपमें ये बाह्य पदार्थ विदित होते हैं। उस आशयको लेकर शङ्काकार यह कह रहा है कि प्रत्यक्षसे तो अर्थाकार ज्ञान ही अनुभवमें आता, बाह्य पदार्थ कुछ हैं ही नहीं, अनुभवमें नहीं आते प्रत्यक्षसे। यों व्यवहारसे, कल्पनासे बाह्य पदार्थ ज्ञात होते हैं तो कहीं वे परमार्थ बन जायेंगे। आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि यह बात नहीं कह सकते। प्रत्यक्षमें तो ज्ञानकी ही ज्ञानरूपता प्रतिभासमें आती है पदार्थकी ज्ञानरूपता नहीं आती। ज्ञान ज्ञानरूपसे जाना जा रहा है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानकी ज्ञानरूपताका स्पष्टीकरण देखिये ! जिस आशयका शङ्काकार होता है वह मान सके, उस ही रूपसे उत्तर दिया जाना चाहिए। इस उत्तरमें भी यह भाव भरा है कि जितने भी ज्ञान होते हैं वे सब अपने आपका निर्णय रखते हैं बाह्य पदार्थका कोई ज्ञान निश्चय नहीं करता अर्थात् बाह्य पदार्थमें ज्ञान प्रवेश नहीं करता। प्रत्येक ज्ञान अपने आपमें ठहर करके अपने आपमें निश्चय बनाता रहता है। यों प्रत्यक्षकी ओरसे ज्ञानकी ही ज्ञानरूपता निश्चयमें आयी। बाह्य पदार्थ ज्ञानरूप हैं यह प्रत्यक्षमें नहीं आता। और, देखिये ! यहाँ दो की बात चल रही है ज्ञानने जाना, पदार्थको जाना। प्रतिभासमें ज्ञान भी आया और पदार्थ भी आया, पर एक तो मैं जानता हूँ इस प्रकार अहं प्रतीतिके रूपसे प्रतिभासमें आया और एककर्म रूपसे इसको जानता हूँ इस रूपसे प्रतिभासमें आया तो जैसे ज्ञान प्रतिभासमें आया तो उसमें मैं हूँ, ऐसा विशेषण फबता है, पर जो बाहरी चीज चौकी घट आदिक ज्ञानमें आये उनमें मैं घट हूँ ऐसा तो कोई नहीं समझता। अहंकार अहं शब्द जिसमें न जुड़ सके उस रूपसे तो अर्थका प्रतिभास होता और अहं जिसमें विशेषण लग सकता उस रूपसे ज्ञानका प्रतिभास हुआ प्रत्यक्षता तो अहं वाले ज्ञानकी ही है।

अहं और अनहं शैलीमें हुए प्रतिभासकी एकरूपताका अभाव अब दो ढङ्गके हुए प्रतिभास। तो ज्ञानरूपता तो उस प्रतिभासको ही दी जा सकेगी जिसके साथ अहं की बात उठती है, मैं चौकीको जानता हूँ ऐसा समझनेमें अहं का भी बोध हुआ चौकीका भी बोध हुआ, पर मैंका तो हुआ अहं रूपसे और चौकीका हुआ अनहम् रूपसे। तो जो अहं रूपसे बोध हो वह तो ज्ञानरूप बन जायगा पर जिसका अहं रूपसे बोध नहीं है वह ज्ञानरूप नहीं बन सकता क्योंकि अगर पदार्थका भी प्रतिभास अहं रूपसे माना जाने लगे तो फिर ऐसा ज्ञान होना चाहिए कि मैं घड़ा हूँ, मैं चौकी हूँ, समग्र ज्ञानोंमें इस प्रकारके बोध जमना चाहिए, किन्तु प्रतीति तो हो रही हो और किस्मकी और व्यवस्था और ढङ्गसे करे यह बात नहीं बन सकती। प्रतीति होती है अहंमें ही ज्ञानरूपसे और व्यवस्था करे कि यह मैं इन पदार्थोंरूप हूं तो अन्य प्रकारकी प्रतीतिमें अन्य प्रकारकी व्यवस्था नहीं बन सकती, अन्यथा हम जानें तो नील आदिक पदार्थोंको और पीला है, काला है ऐसी अनेक व्यवस्था कर डालें इससे ज्ञान अर्थका प्रतिबिम्ब नहीं लेता। वह तो जानता है, ग्रहण करता है। ज्ञान स्व व्यवसायी है अपना भी निश्चय करता और पर पदार्थका भी निश्चय करता है।

अपने अपरिचयका आश्चर्य व खेद देखिये ! हम ज्ञान ही तो हैं और निरन्तर हमारा काम चलता रहता है ऐसा भी नहीं कि ज्ञानका काम बन्द हो जाय, कषायोंका तो प्रवर्तन होता रहता है। अब क्रोध है, अब नहीं है, अब मान है कोई भी कषाय, कैसी भी वृत्ति चल रही हो, किन्तु ज्ञान सर्वत्र रहता है। तो मैं ज्ञानरूप है और मेरा काम भी निरन्तर चल रहा है तिसपर भी मैं क्या हूँ, कैसा काम है, किस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूपसे चल रहा है, इसका बोध नहीं हो रहा है। इसीको ही अज्ञान कहते हैं। अपने आपके निकटकी बात अपनेको विदित न हो, जिस घरमें रहते हैं उस घरकी बात अपनेको विदित न हो तो जैसे यह एक आश्चर्य और खेदकी बात मानी जायगी इसी प्रकार यह मैं ज्ञानरूप हूँ और इस ज्ञानके द्वारा मैं सारी व्यवस्था बनाता हूँ, धनसम्पदा की व्यवस्था, समाजकी व्यवस्था, अनेक व्यवस्थाएँ इस ज्ञानके द्वारा ही तो बनाता हूँ और इस ज्ञानका ही हमें पता नहीं कि यह क्या है ? व्यवस्था करने वाला कौन है, जानने वाला कौन है, किस स्वरूपका है ? नहीं जान पाते हैं यह भी आश्चर्य व खेदकी बात है। है बात, पर बीत तो ऐसी ही रही है। अपने सर्वस्वको नहीं जान रहे हैं।

आत्म परिचयसे आत्मबोधकी अनेकशः सुगमता जब तक अपने परिचयकी बात बीत रही तब तक अज्ञान है और जिस कालमें अपने हो इस ज्ञान स्वरूप का परिचय होगा जो अमूर्त है, केवल ज्योतिमात्र है, जाननहार है और जिसके प्रदेश जरूर है। आधार अवश्य है जहाँ यह सब कार्य हो रहा है उसका परिचय होनेपर फिर तो सुगमतासे अल्प ही प्रयाससे उसका बोध होता रहता है। जैसे कोई छपे हुए ऐसे कार्ड आते हैं कि जिनमें पेड़के चित्र बने होते हैं और कुछ नहीं होता पर वे इस ढंगसे बना दिये जाते कि उनमें कहीं गधाकी सकल, कहीं खरगोशकी सकल हो जाती है। किसीसे पूछें कि बताओ इसमें कोई जानवर है क्या। तो उसे देखकर प्रायः कोई नहीं बता सकता। उसे तो लिखा ही लिखा नजर आयगा। कोई पेड़ जैसा दिखेगा लेकिन जब उसे समझा दिया जाय कि देखो ये कान हैं, यह पूछ है, यह मुख है, ये पैर हैं देखो यह गधा है ना, फिर उसे कोई कार्ड दिखाये को देखते ही वह झट कह देगा कि यह गधा है। पहिले बहुत श्रम कर रहा था तिसपर भी नहीं बता सकता था, अब देखते ही जरा सी निगाहमें बता देगा, ऐसी ही इस आत्मतत्त्व की बात है। जब तक इसका परिचय नहीं है तब तक कोई अनेक प्रयास करके भी समझाये पर वह नहीं समझ पाता, उसकी बुद्धि थक जाती है, और एक बार भी अनुभव हो जाय, इन बाह्य पदार्थोंका विकल्प न करे। जगतमें सब माया असार है, भिन्न है अतएव इसमें अपने उपयोगको फसानेमें लाभ नहीं है ऐसी भावनासे जब हम परकी उपेक्षा कर दें और अपने आपमें अपूर्व विश्रामसे स्थित हो जायें उस कालमें एक सहजरूपसे ही अपने आपके सहज स्वरूपका अनुभव होता है और उस ज्ञानानुभूतिमें जो विलक्षण अनुपम आनन्द प्रकट होता है उस आनन्दके अनुभवके कारण फिर यह आत्मा अविस्मरणीय हो जाता है। जरासी दृष्टि दी इसका तुरन्त स्मरण हो जाता है, और तुरन्त यों लगता कि यह हूँ मैं आत्मा, यह है वह ज्ञान जिसकी चर्चा की जा रही है।

अर्थरूपतासे प्रतिनियत अर्थज्ञानकी व्यवस्थाका पुनः पक्ष—यह ज्ञान अमूर्त है, पदार्थके प्रतिविम्बसे रहित है, किन्तु ज्ञान अपने स्वभावसे, योग्यतासे इन पदार्थोंका ग्रहण करता है, जानता है, इस सिद्धान्त पर आपत्ति देते हुए साकार ज्ञान-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वादी यह बात रख रहे हैं कि भाई ज्ञानमें अर्थाकारता न आये तो ज्ञानको पदार्थके साथ घटित नहीं किया जा सकता कि यह नीलका बोध हैं पीतका बोध है, यह इस पदार्थका ज्ञान है यह सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता जब कि पदार्थका आकार ज्ञानमें न आता हो, क्योंकि पदार्थका आकार न आये, ज्ञान निराकार रहे तो निराकार ज्ञान का किसी पदार्थसे न तो निकटताका सम्बन्ध रहा न इसीका सम्बन्ध रहा फिर तो सभी अर्थ इसके ज्ञानमें घटित हो जाना चाहिए और फिर सभी पदार्थ एक रूपमें विदित होना चाहिए। अलग अलग भी क्यो विदित होता है कि यह चौकी है यह घड़ी है यह अमुक है। वह तो सब कुछ ऐक वेदन बन जायगा, तब फिर यह जुदी जुदी व्यवस्था न बन सकेगी कि पटज्ञानका विषय पट है, घट ज्ञानका विषय घट है यह इन सब व्यवस्थावोंका उपाय है कि ज्ञानको पदार्थके आकार मान लिया जाय। जो ज्ञान जिस पदार्थके आकार बना है वह ज्ञान उस पदार्थका ग्राहक है। ज्ञाता है यह व्यवस्था बन जायगी। अर्थ रूपताको छोड़कर और कोई व्यवस्था ऐसी नहीं है कि जो ज्ञानको पदार्थसे सम्विदित करा सके ऐसा अपना पक्ष साकार ज्ञानवादियोंने रखा।

ज्ञानकी अर्थरूपताके निराकरणमें घटयतिके भाव विकल्प - ज्ञानकी अर्थरूपतासे व्यवस्था बनानेके सम्बन्धमें दार्शनिक पद्धतिसे उत्तर दे रहे हैं कि तुम्हारा जो यह कहना है कि अर्थरूपता ज्ञानको पदार्थसे घटित करा देती है तो घटित करा देती है इसका अर्थ क्या है ? क्या विवक्षित ज्ञानको घटसे सम्बन्धित करा देती है याने यह अर्थाकारता इस ज्ञानका पदार्थसे सम्बन्ध करा देती है या अमुक पदार्थसे सम्बद्ध यह ज्ञान है ऐसा निश्चय करा देती है। इन दो मेंसे आपका घटयतिका अर्थ क्या है ?

अर्थरूपता द्वारा ज्ञानका अर्थसे सम्बन्ध करा देनेके विकल्पकी मीमांसा यदि पहिली बात कहें कि घटित करनेके मायने यह है कि यह अर्थ यह भीतर उठा हुआ प्रतिबिम्ब ज्ञानका उस पदार्थके साथ सम्बन्ध करा देता है तो ज्ञानका सम्बन्ध ज्ञानकी अर्थरूपताके द्वारा नहीं किया जाता किन्तु अपने अपने जो कारण हैं इन्द्रिय हैं उनसे ही यह ज्ञान अर्थसे सम्बद्ध होता हुआ उत्पन्न होता है। पदार्थका ज्ञानमें प्रतिबिम्ब आया और वह प्रतिबिम्ब इस ज्ञानका उस पदार्थसे सम्बन्ध कराये ऐसा नहीं है किन्तु उस उस कारणरूप इन्द्रियके द्वारा वह ज्ञान उत्पन्न होता है तो अर्थ सम्बन्धी ही ज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् अमुक पदार्थ है यह इस प्रकारका अपनेमें आकार बना कर, ज्ञान बनाकर ज्ञान उत्पन्न हुआ करता है। ऐसा तो नहीं है कि वह अर्थ रूपता पहिले ज्ञानको उत्पन्न करे और पीछे उस अर्थसे जुड़े कि यह ज्ञान इस पदार्थका है ऐसा तो नहीं होता। भैया ! सीधी सी बात यह है कि वह जो अर्थ प्रतिबिम्बित होता है ज्ञानमें वह प्रतिबिम्ब ज्ञानका अर्थके साथ सम्बन्ध कराये इसका कारण नहीं बन सकता क्योंकि फिर तो तादात्म्यका अभाव हो जायगा। अर्थ रूपता और ज्ञानमें फिर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एकपना नहीं रहा। कोई मनुष्य किसीका सम्बन्ध कराये तो वह भिन्न है ना, स्वयं जैसा है उसमें यह सम्बन्धकी बात कैसे घटित हो सकती है इस लिये घटयतिका अर्थ सम्बन्ध कराना तो बना नहीं।

अर्थरूपता द्वारा ज्ञानकी अर्थ सम्बद्धताका निश्चय कराये जानेके विकल्पकी मीमांसा —यदि यह कहो कि अमुक अर्थसे सम्बद्ध है ज्ञान ऐसा निश्चत कराता है यह प्रतिविम्ब तो भाई सम्बन्ध ही की तो यह बात चल रही है, सम्बन्ध ही असिद्ध है तो उसके बारेमें फिर प्रकार ढूढ़ना, सम्बन्ध करानेकी बात सोचना यह तो प्रश्न है। उसके उत्तर रूपमें तुम कह रहे हो। अरे ज्ञानकी जो अर्थरूपता है वह अर्थसे सम्बन्ध रखने वाले ज्ञानके साथ ही उत्पन्न होती है ऐसा किसीने जाना है क्या ? जिस से वह अर्थ सम्वद्ध ज्ञानका निश्चय कराये। ज्ञानका पदार्थके साथ इतना ही सम्बन्ध है कि किसी विशेष विषयका ज्ञान उत्पन्न करदे, संश्लेषात्मक नहीं है। इन पदार्थोंका ज्ञानके साथ जो सम्बन्ध है वह संयोगात्मक नहीं है कि यह पदार्थ ज्ञानमें मिल जाय या इस पदार्थका प्रतिविम्ब ज्ञानमें मिल जाय ऐसा संश्लेषात्मक सम्बन्ध नहीं है किन्तु ज्ञानात्मक सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध इन्द्रियके द्वारा किया जाता है अतएव अर्थाकार का साधन बनाना कि इससे ज्ञानने अमुक पदार्थको जाना ऐसी प्रयास करना व्यर्थ है देखिये अन्तरङ्ग निमित्त, आन्तरिक बाह्य निमित्त तो ज्ञानावरणका क्षयोपशम है। किसी भी पदार्थका हम ज्ञान करें उसमें कितने कारण पड़ते हैं तो अन्तरङ्ग बाह्य निमित्त तो ज्ञानावरणका क्षयोपशम है और बहिरङ्ग बाह्य निमित्त इन्द्रिय आदिककी समर्थता और उपादान कारण वह भाव ज्ञानरूप योग्यता है ऐसी स्थितिमें पदार्थका बोध होता है और प्रतिनियत यह अमुक ज्ञान है अमुकका ज्ञान है ऐसी व्यवस्था बनती रही है।

ज्ञानमें अर्थके तथा अर्थमें ज्ञानके प्रवेशका उपचार – ज्ञान अर्थकी वे धातुवें होती है प्रायः करके,गमन अर्थमें जो धातुवें लगती हैं। जैसे गच्छति अवगच्छति का अर्थ है जाता है और अवगच्छति लगा तो उसका अर्थ जानता है बनता है। तो जानना और जाना ये किसी किसी शैलीमें एक रूप पद्धतिमें मालूम होते हैं और कभी ऐसा लगता है कि हम किसी पदार्थको जानते है तो प्रतीति होती है मेरा ज्ञान उस मकानमें चला गया। और जब कभी किसीसे पूछते भी हैं—क्यों साहब आप ठीक सुन रहे हैं ना, आप कहाँ गए थे ? तो वह बोलता है कि हम अभी बम्बई चले गए थे, हमने तो नहीं सुना। अरे भाई आप तो यहाँ बैठे बम्बई कैसे चले गए ? तो यह ज्ञान बम्बई चला गया। क्या यह ज्ञान या यह आत्मा किसी अन्य जगह भी चला जाता है ज्ञान तो ज्ञानके आधार भूत आत्मामें ही रहता हुआ यहींसे सारी व्यवस्थाएँ बनाता है, पर जाननेकी शैली ऐसी है जिसमें ऐसा विदित हो कि मेरा ज्ञान अमुक जगह गया, इसी प्रकार ज्ञान अर्थ वाली धातुवें प्रायः करके प्रकाश प्रतिबिम्ब अर्थमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रयुक्त होती हैं और उसका भी निकट कारण यह है कि जिस चमकीली ज्योति वाले पदार्थमें पदार्थकी छाया आ जाती है इसी प्रकार कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि इस ज्योतिमें भी इस ज्ञानमें भी पदार्थका आकार आता है। और लोग कहते भी हैं क्यों जी तुम ध्यानसे क्यों नहीं सुनते ? तुम्हारे चित्तमें ज्ञानमें हमरा उपदेश क्यों नहीं समाता ? ·· अजी क्या करें। ज्ञानमें तो घर समाया है। उपदेश क्या चित्तमें समाये ? तो ज्ञानमें भी कुछ समानेकी बात कहनेका व्यवहार है। तो यह सब एक औपचारिक बात है। वस्तुतः ज्ञान निराकार है और अपने ही आधारमें रहकर सारी व्यवस्था बनाता है।

ज्ञानकी प्रतिनियतकर्म व्यवस्थाका कारण - ज्ञान ज्ञानरूप है, उसमें पदार्थका प्रतिबिम्ब नहीं आता। फिर भी इन्द्रियका ऐसा ही व्यापार है कि वे सामने रहने वाले अभिमुख और प्रतिनियत अर्थमें ही ज्ञानके उत्पादनमें कारण है इस कारण समस्त अर्थोंको एक साथ अटपट रूपसे जान लेनेका प्रसङ्ग नहीं आता। कोई यदि पूछे कि किस कारणसे इन्द्रियका यह नियम बना है कि वह सामने रहने वाले और प्रतिनियत अर्थको ही जाने। जैसे रसना इन्द्रिय रसको ही जाने घ्राण इन्द्रिय गंधको ही जाने, चक्षु इन्द्रियके कारण रूपके ही ज्ञानका नियम बने कर्ण इन्द्रियके द्वारा शब्द के ज्ञानका ही उत्पादन बने ऐसे भिन्न भिन्न प्रकारके विषयोंका विज्ञान और सामने रहने वाले पदार्थोंका ज्ञान इन इन्द्रियके द्वारा होता है ऐसा नियम क्यों बना ? उत्तर यह है कि वस्तुके स्वभावमें प्रश्न नहीं चला करता। यहाँ तक तो जैसे कहा जा सकता है कि अग्निका सम्बन्ध होनेपर पानी गर्म हो जाता है ऐसा ही कारण है। अब कोई इसमें भी पूछ बैठे कि अग्निका ऐसा सम्बन्ध बना कि उसके सम्बन्धसे पानी गरम हो जाय ? तो इसमें और क्या उत्तर दिया जायगा ? कारण की बात बता दी अब फिर पूछें कि यह आयगा कि वस्तुका स्वभाव है, अग्निका स्वभाव है गरम रहना, जलका स्वभाव है कि अग्निका सम्बन्ध पाकर गरम हो जाना अब इसमें भी कोई कारण पूछे तो यों बहुत कारणोंकी जो खोज करता है, बहुत क्यों चलाता है उसमें फिर वजन नहीं रहता। हर बातमें क्योंकी बात लगाना एक कुतर्क है।

योग्यता माननेकी सर्वत्र अनिवार्यता—देखिये ! कारण कार्यकी उत्पत्ति में नियम होता है, उनका प्रतिनियम होता है, उसमें प्रश्न नहीं हुआ करते। वहाँ प्रश्न बेकार हैं और फिर जो ज्ञानको साकार मानता है, पदार्थका आकार बन जाता है ऐसा मानने वालोंसे भी पूछा जा रहा है कि अर्थाकार होकर भी ज्ञान सन्निहित, सामने पड़े हुए नील आदिकको ही क्यों जानता है, सबको क्यों नहीं जानता ? वहाँ तो यह कहा जायगा कि उस साकार ज्ञानकी इसी तरहसे उत्पत्ति होती और साकार ज्ञानके द्वारा वे पुरोवर्ती पदार्थ ही जाने जाते हैं। तो यही माना निराकार में। ज्ञानमें जिस तरहकी योग्यता है और जिस पदवीमें ज्ञान जिन इन्द्रिय आदिकका निमित्त पाकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जानता है वहाँ उस तरीकेसे जानता है, तब पदार्थकी व्यवस्था बनती है कि इस ज्ञान ने अमुक पदार्थको जाना।

ज्ञानके उत्पादकका आकार ग्रहण करनेका अनियम—दूसरी बात यह पूछी जा रही है साकारवादियोंसे कि जिस पदार्थसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थका आकार रख लेता है। तो जैसा ज्ञान इस पदार्थसे हुआ, बल्कि पदार्थसे ज्ञान उत्पन्न हुआ यह बात कम प्रतीतिमें आती है और इन्द्रियसे ज्ञान उत्पन्न हुआ यह बात अधिक प्रतीतिमें आती है। हमने आँखोंसे देखा, नाकसे सूँघा, कानोंसे सुना ऐसा स्पष्ट बोध आ रहा है। तो जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है उसका आकार रखता है ज्ञान तो इन्द्रियसे उत्पन्न होनेके कारण ज्ञान इन्द्रियका आकार क्यों नहीं रख लेता? यदि कहोगे कि वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है कि ज्ञान पदार्थका आकार तो ग्रहण करता है और इन्द्रियका आकार नहीं ग्रहण करता तो वस्तुस्वरूप मानना पड़ा ना, ऐसी ही निराकरण ज्ञानकी बात है, उसमें ऐसा ही स्वभाव है, ऐसी ही योग्यता है कि वह कुछ पदार्थोंको जानता है और प्रतिनियत अर्थको जानता है।

ज्ञानकी अर्थाकारताके निश्चयका अनिर्णय एक अन्य बात और पूछी जा रही है साकारज्ञानवादियोंसे कि ज्ञानको तुम साकार मानते हो अर्थात् जिस पदार्थको ज्ञान जानता है उस पदार्थका प्रतिबिम्ब ज्ञानमें आ गया और वह ज्ञान उस पदार्थरूप बन गया है तब वह पदार्थको जानता है, तो यह तो बतावो कि ज्ञानमें यह आकार आया है यह बात अर्थात् ज्ञानकी साकारता किसी साकार ज्ञानसे जानी जाती है या निराकार ज्ञानसे जानी जाती है, इस ज्ञानमें पदार्थका आकार आया है ऐसा ज्ञान जिस ज्ञानसे जाना जायगा वह ज्ञान साकार है या निराकार? यदि कहो कि साकार ज्ञानसे ही ज्ञानकी साकारता जानी गयी तो उस ज्ञानका आकार किसी तृतीय ज्ञानसे जाना जायगा फिर उसको किसी चतुर्थ ज्ञानसे जाना जायगा। यों अनवस्था दोष बन जायगा। यदि कहो कि निराकारसे ही ज्ञानकी साकारता जान ली जाती है अर्थात् ज्ञानमें पदार्थका आकार आया है इसका निश्चय किसी निराकार ज्ञानसे हो जाता है तो निराकार ज्ञानसे एकदम सीधा ही बाह्य अर्थोंका परिज्ञान मान लेनेमें तुम्हें क्यों द्वेष हो गया है?

ज्ञानकी निराकारता व स्वव्यवसायितासे व्यवस्था—ज्ञान है, वह अमूर्त है, आकाशवत् निर्लेप है, स्वतन्त्र है और उसका विलास है जानते रहना। यह जानन विलास ज्ञानका कभी सभी समाप्त नहीं होता है। शुद्ध हो जानेपर अनन्त पदार्थोंको यह ज्ञान जानता रहता है, अनन्तकाल तक जानता रहेगा। ज्ञानकी तो खूबी ही यह है, उसमें किसी परकी अपेक्षा लगाना कि पदार्थका इसमें प्रतिबिम्ब आया उससे फिर यह ज्ञान काम करता है, प्रमाण बनता है यह वस्तुके स्वभावको परतन्त्र बना देने वाली बात है और कभी स्वभावतः वस्तु परतन्त्र बन जाय तो जगत शून्य हो जायगा,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई चीज ही न रहेगी क्योंकि स्वयं सहज सत्ता नहीं रही किसी की। तो इससे यह निर्णय रखो कि ज्ञान निराकार है और स्वव्यवसायी है और इस ही कारण वह पर पदार्थोंका भी निर्णायक होता है।

आकार ग्रहणसे सन्निकर्षके प्रामाण्यकी प्रशक्ति अब एक अन्य बात और पूछी जा रही है साकारज्ञानवादियोंके सिद्धान्तमें कि जब यह माना कि पदार्थसे ज्ञानका सम्बन्ध बने तब ज्ञानमें प्रमाणता आती है अथवा वह ज्ञान जानता है तो इस का खुलासा अर्थ यह हुआ कि सन्निकर्ष प्रमाण है. पर क्षणिकवादी सन्निकर्षको प्रमाण मानते नहीं लेकिन पदार्थके साथ ज्ञानकी घटना घटानेसे, सम्बन्ध बनानेसे सन्निकर्ष प्रमाण बनेगा और पदार्थका अवगम हो यह उसका फल रहेगा, क्योंकि ऐसा किए बिना प्रतिनियत अर्थमें ज्ञानका सम्बन्ध नहीं बन सकता सो सन्निकर्षकी प्रमाणता क्षणिकवादमें अनिष्ट है।

आकार ग्रहणसे ज्ञान द्वारा अर्थज्ञाप्तिकी असंभवता यहाँ स्पष्ट दोष तो यह है कि ज्ञान यदि पदार्थका आकार लेकर जाने तो ज्ञानके लिये तो सारे पदार्थ एक समान हैं। सभी पदार्थोंका आकार ज्ञानमें आ जाना चाहिए और फिर अनियत अर्थके साथ ज्ञानका सम्बन्ध जुट बैठेगा। तब सभी अर्थोंमें एक ही ज्ञान रहना चाहिए यह भेद क्यों ज्ञात हो रहा है ? यह चौकी है यह चश्मा है, यह कमण्डल है ऐसे भिन्न भिन्न ज्ञान क्यों बन रहे हैं। आकार जब आता है पदार्थका तब फिर सभी का बन जायगा। ऐसा होनेपर फिर न कोई पदार्थ निकट है ऐसा ज्ञात होगा और न कोई पदार्थ दूर है ऐसा ज्ञात होगा, फिर इस ज्ञानकी कोई व्यवस्था ही न रहेगी।

साकारज्ञानवादमें इन्द्रियकी अनियामकताके कारणपर प्रश्न – अब अन्य दोष भी सुनिये ! साकार ज्ञान माननेपर साकारज्ञानवादीने यह मन्तव्य रखा था कि चूंकि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होता है सो जिस पदार्थसे जो उत्पन्न हुआ है ज्ञान वह उस पदार्थको जानने लगता है। तो जिससे उत्पन्न हुआ उसको जाने ऐसा सिद्धान्त बना लेनेपर इन्द्रियके साथ व्यभिचार हो जायगा अर्थात् इन्द्रियसे ज्ञान उत्पन्न हुआ, किन्तु यह ज्ञान इन्द्रियका नियामक नहीं है, जानने वाला नहीं है, कोई चीज अपनी आँखोंसे जानी तो इन अपनी आँखोंको हम देख सकते हैं क्या ? लेकिन इन्द्रियसे ही तो ज्ञान बना सके और ज्ञान आँखोंको यह ज्ञान जानता नहीं, किन्तु यह नियम माननेपर कि जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है उसे ज्ञान जानता है तब फिर इन्द्रियको भी जान लेना चाहिए। पदार्थको ही जानता है, ज्ञान, इन्द्रियको नहीं जानता; यह नियम कैसे बनेगा जो ज्ञान जिस इन्द्रियसे उत्पन्न हो उस ज्ञानकी उस इन्द्रियके लिये बात कह रहे हैं।

तदुत्पत्ति और ताद्रूप्यसे ज्ञानकी नियामकता बनाकर दोष निराकरणका प्रयास – यदि कहो कि बात तो दोनों होना चाहिए तब ज्ञानका नियम बनेगा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वे दो बातें क्या ? कि पदार्थसे जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है और उस ही पदार्थके आकार ज्ञान बनता है तो वह ज्ञान उस पदार्थका जानने वाला है यह कहा जाता है, इन्द्रियमें यह बात तो नहीं है। वही शंकाकार कहे जा रहा है कि यह ज्ञान इन्द्रियसे उत्पन्न तो हुआ पर ज्ञान इन्द्रियके आकार तो नहीं बना। जैसे ज्ञान चौकीके आकार बन जाता है ऐसा मालूम किया जा रहा है, कुछ ऐसा यह तो नहीं मालूम होता कि यह ज्ञान इन्द्रियके आकार भी बन रहा है। तो जब दोनों बातें ज्ञानमें आ जायें जिस से उत्पन्न हुआ और उसीके आकाररूप बने तो ज्ञान उसे जाने। तो यह इन्द्रियजन्य ज्ञान इन्द्रियसे तो उत्पन्न होता पर इन्द्रियका आकार ग्रहण किया, अतः इन्द्रियको नहीं जानता। पर पदार्थसे तो उत्पन्न होता है और पदार्थके ही आकार बना है इस कारण ज्ञान पदार्थको जानता है ऐसा शङ्काकारने अपनी बात रखी।

तदुत्पत्ति व ताद्रूप्यसे ज्ञानकी नियामकताका समानार्थसमनन्तर प्रत्ययमें व्यभिचार द्विरूपतावादके उत्तरमें आचार्यदेव कहते हैं कि देखो, उस इन्द्रियजन्य ज्ञानमें ताद्रूप्य न सही, लेकिन उस ही पदार्थमें उस ही ज्ञानके बाद उस ही पदार्थका जो एक द्वितीय ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस द्वितीय ज्ञानमें प्रथम ज्ञानका आकार भी आया और प्रथम ज्ञानसे उत्पन्न भी हुआ तो वह समनन्तर ज्ञान अर्थात् द्वितीय ज्ञान फिर प्रथम ज्ञानको क्यों नहीं जानने लगता क्योंकि उस द्वितीय ज्ञान में तो प्रथम ज्ञानका आकार भी आया और वह प्रथम ज्ञानसे उत्पन्न हुआ। दोनों बातें मिल गई फिर क्यों नहीं पूर्वज्ञानको प्रमाण कर लेता है यह दूसरा ज्ञान। इस कारण यह भी नहीं ठीक बनता है कि जिससे ज्ञान उत्पन्न हो और जिसके आकार ज्ञान बने वह ज्ञान उसे जानता है। यह तो दलील तुम्हारी थोथी ही है इस कारण ज्ञान साकार नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्धमें बारबार समझाया गया है और यह दोष दिया गया है कि ज्ञान यदि आकार ग्रहण करता है जिससे उत्पन्न हुआ उस पदार्थका जैसे आकार ग्रहण करता है इस तरह इन्द्रियका आकार क्यों नहीं ग्रहण करता ? आखिर ज्ञान इन्द्रियसे ही तो उत्पन्न हुआ है जैसे तुम पदार्थसे उत्पन्न हुआ मानते हो।

आलम्बन और उपादानमेंसे आलम्बनके ही आकारके ग्रहण करनेकी असगतता देखिये उत्पत्तिकी समानता होनेपर यह ज्ञान पदार्थोंसे उत्पन्न हुआ और इन्द्रियसे उत्पन्न हुआ दोनोंसे उत्पन्न हुआ है तिसपर भी इन्द्रियका आकार तो छोड़ देना और पदार्थके आकारका ग्रहण करना बताते हो और दृष्टान्त देते हो पुत्रका कि जैसे पुत्र है तो माता और पिता इन दोनोंमें ही किसी एकका आकार रखता है इसी तरह उत्पत्तिकी यह विशेषता है ज्ञानमें। अर्थका तो आकार ले लेता है और इन्द्रिय का आकार नहीं लेता यह बात तुम्हारी असंगत है क्योंकि अब तो यहाँ तीन बातें आयी हैं केवल पदार्थ और इन्द्रियकी ही बात नहीं है। जैसे कोई ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न हुआ और इन्द्रियसे उत्पन्न हुआ और उस ज्ञानके बाद फिर अन्य ज्ञान हुआ तो वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्वितीय ज्ञान तो प्रथम ज्ञानसे हुआ ना। तो प्रथम ज्ञान उपादान हुआ ? उस उपादान का आकार क्यों नहीं ले लेता। दो बातें हो गयीं ना। एक तो यह पदार्थ जैसा ज्ञान जान रहा है यह तो निमित्तभूत है और प्रथम ज्ञान जिसके सिलसिलेमें द्वितीय ज्ञान बना है उसका उपादान है ज्ञान। तो उपादान और निमित्त इन दोनोंसे ही तो कार्य बताया जा रहा है। कोई ज्ञान उत्पन्न हुआ है तो जैसे वह पदार्थके आलम्बनसे होता है इसी प्रकार अपने ज्ञानके सिलसिलेसे भी तो होता है। तो ज्ञानका उपादान है पूर्व ज्ञान और ज्ञानका आलम्बन है बाह्य अर्थ। फिर बाह्य अर्थका तो आकार ले ले और उपादानसे न ले। यदि कहो कि दोनोंसे ले लेगा। विषय तो आलम्बन रूप कारण है और उसका उपादान समनन्तर प्रत्ययरूप है अर्थात् ज्ञानके ही सिलसिलेमें ज्ञान उत्पन्न होता है। दोनोंका सम्बन्ध रहा ज्ञानसे इस कारण दोनोंका आकार ग्रहण कर लेगा क्या हर्ज है। तो उत्तर दे रहे हैं आचार्य कि हर्ज यह है, तब फिर जैसे पदार्थका ज्ञान हो जाता है, पदार्थ विषय बन जाता है इसी प्रकार उपादान भी विषय बन जायगा। अर्थात् जैसे हम पदार्थको ज्ञानसे सीधा जान लेते हैं इस तरह उपादानको भी सब लोग जाने रहें।

पूर्वपक्षकार द्वारा अध्यवसायका तीसरा सुझाव — अब इस प्रसंगमें एक अन्य बात पूर्व पक्षकार कह रहे हैं कि भाई ज्ञानमें दो बातें अभी बतायी हैं कि यह ज्ञान जिससे उत्पन्न हो और जिसके आकार रूप बने उसे जानता है तो ये दो बातें जैसे पदार्थके लिये बन गई ऐसे ही समनन्तर ज्ञानके लिये भी बन गई। द्वितीय ज्ञानमें भी ये दोनों बातें हैं, वह पूर्व ज्ञानसे उत्पन्न हुआ और पूर्व ज्ञानका आकार भी रख रहा लेकिन अध्यवसायका नियम नहीं है अर्थात् ज्ञानका नियामक नहीं है, ज्ञान ज्ञानको नहीं जानता। ज्ञान तो पदार्थोंको जानता है, जैसे कि लौकिक जन उसके बारेमें ऐसा ही अपना भाव बनाये हैं। तो अध्यवसायका नियम अर्थात् निश्चय करनेका नियम केवल पदार्थके साथ है इस कारण ज्ञान अर्थका ही नियामक है। तो उत्तर दिया जा रहा है कि उपादानका निश्चय क्यों नहीं करा बैठते ? अन्यथा दोनोंका ही निश्चय न रहा न तो पदार्थका ज्ञान बने और न अपने उपादानका ज्ञान बने।

तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य व अध्यवसायसे भी व्यभिचारका अनिवारण — तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य व अध्यवसाय तीनों बातें माननेपर भी एक दोष यह है। वे तीन बातें क्या मानी है इन साकार ज्ञानवादियोंने कि यह ज्ञान पदार्थसे तो उत्पन्न हुआ और पदार्थका ही आकार रख रहा और फिर उस हीका निश्चय कर रहा इसलिये ज्ञानमें उस प्रतिनियत पदार्थके जाननेका नियम बना है। तो देखो जिस पुरुषको कामला रोग है जिसकी वजहसे प्रत्येक चीज पीली पीली दिखती है पीलीया रोग होता है, उससे चक्षु आहत हो। गए हैं वह तो सफेद शङ्खको देखेगा तो उसे पीला बतावेगा। सफेद शङ्खमें पीताकारका ज्ञान हुआ तो यह प्रमाण क्यों नहीं बन बैठा पूर्वज्ञानके निर्णयमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

साकार ज्ञान माननेपर विज्ञान अपने स्वरूपमें प्रमाण है यह बात भी बनती नहीं है।

ज्ञानका साकार स्वरूप और उससे अर्थव्यवस्था—ज्ञान होता है पदार्थो को जानता है, पदार्थोंकी मुद्रा, पदार्थोंका आकार अपने जाननेमें लेता है बस यही है ज्ञानकी साकारता। इससे और आगे न बढ़िये। किसी भी बातमें अपनी बात बढ़ानेसे कोई सीमाका उल्लंघन कर दिया जाय तो वह बात बैठती नहीं है चलती नहीं है। जैन लोगोंने भी ज्ञानको साकार माना है पर वह आकार है पदार्थके जानन रूप विकल्पका, किन्तु मैं इससे भी अधिक साकारवादी बन जाऊँ तो मेरी कुछ और पोजीशन बढ़ेगी दर्शन क्षेत्रमें, सोचकर ऐसा आकार मान लें कि जैसे पदार्थका आकार दर्पणमें झलकता, दर्पणमें छाया पड़ती इस तरह पदार्थोंका आकार ज्ञानमें झलकता। ज्ञानमें प्रतिबिम्ब आ जानेकी बात लगती है ऐसी कि जिस पदार्थको जाना उस पदार्थकी मुझमें फोटो आ गयी है किन्तु ऐसा होता नहीं है। फोटो तो वहाँ आये जहाँ कुछ भौतिकपना हो। मूर्तमें मूर्तका फोटो आता है। यह अमूर्त पदार्थका फोटो कैसे आ सकता है। ज्ञान ऐसा प्रतिबिम्ब वाला नहीं है। वह तो एक ज्योति है ऐसा परम चैतन्य स्वरूप आत्मा है कि जो समस्त विश्वकी व्यवस्था बनाता है फिर उसे किसी भी पदार्थके आकार रूप नहीं बनाता। समस्त विश्वको जानकर भी समस्त विश्वसे निराला ही यह ज्ञान रहता है और तभी यह ज्ञान पूज्य है, प्रशंसनीय है। तो जान कर भी पदार्थसे अपनेको निराला बनाये रहें ऐसी बात प्रभुमें तो स्पष्ट है, पर ज्ञानी पुरुषोंमें भी प्रतीतिबलसे यह बात बनती है। ज्ञान समस्त अर्थको भी जाने तब भी किसी भी अर्थके आकार रूप नहीं बनता है। वह निराकार रहकर भी पदार्थोंके आकारको जानन रूपसे ग्रहण करता रहता है।

साकार ज्ञानवादमें नीलाकार व क्षणिकतामें भेद-अभेदके विकल्प—ये क्षणिकवादी दार्शनिक ज्ञानको साकार सिद्ध कर रहे हैं। उनका मन्तव्य है कि जैसे दर्पणमें पदार्थोंका फोटो आ जाता है इसी तरह ज्ञानमें इन पदार्थोंका अक्स आ जाता है और फिर उस ज्ञानसे जानता है कि यह अमुक चीज है। लेकिन सिद्धान्त यह है कि ज्ञानमें इन पदार्थोंका फोटो नहीं आता, किन्तु ज्ञानके जाननेकी शैली ही ऐसी है कि जो जैसा पदार्थ है उस रूपसे यह जानता है और उस जानने में ऐसा लगता है जैसा कि मेरेमें इस पदार्थका फोटो आ गया हो। तो इसपर उनसे पूछा जा रहा है कि ज्ञानमें आया कोई पदार्थ और पदार्थ भी नहीं, क्षणिकवादियोंके यहाँ ज्ञानमें गुण-पर्ययपिण्ड पदार्थ आते नहीं, क्योंकि पदार्थ कोई चीज नहीं वे, ये नीला पीला आदिक जो रङ्ग हैं ये पदार्थ हैं। जैसे आत्मा कोई पदार्थ नहीं है किन्तु आत्मामें जो प्रति-समय जानकारी बनती है वह ज्ञान क्षण तत्त्व है, आत्मा तत्त्व नहीं है। इसी प्रकार ये पुद्गल भी कोई पदार्थ नहीं हैं किन्तु नीला पीला जो आकार हैं, रङ्ग है यह ही तत्त्व है। तो उनसे पूछा जा रहा है कि जब ज्ञानमें ये नीले पीले आदिक पदार्थ आये

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो ये पदार्थ जो तुम्हारे ज्ञानमें आये यह नीला है तो पदार्थको क्षणिक भी तो मानते हो। तो उस पदार्थमें जो यह क्षणिकपना है यह पदार्थसे भिन्न है या अभिन्न है ? ज्ञानमें जो चीज आयी जैसे ज्ञानमें चौकी आयी तो यह नील है यह तो आयगा ज्ञान में पर यह चौकी क्षणिक है, विनाशीक है, नष्ट हो जायगी, हो गयी, इस प्रकार जो उसमें क्षणिकपना है उसका आकार इन पदार्थोंसे न्यारा है या एकमेक है ? नील आदिक रूप और विनाशीकता ये दोनों जुदी-जुदी चीज हैं या अभिन्न हैं ? यह पूछा जा रहा है।

नीलाकारसे क्षणिकताका भेद या अभेद माननेपर आपत्ति — यदि नीलाकार अलग है और क्षणिकत्व आदिकका आकार अलग है तो इसका अर्थ है कि नीलाकार क्षणिक नहीं रहा। तब नीलाकार अलग है याने यह पदार्थ न्यारा है और पदार्थमें जो क्षण-क्षणमें नष्ट होनेका धर्म है वह है न्यारा। तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह नीलाकार पदार्थ नित्य हो गया और नित्य कोई चीज मानी नहीं गयी क्षणिकवादमें। यदि कहो कि नहीं वह क्षणिकपना और ये नीले पीले रूप एकमेक हैं। तो ये नील आदिक पदार्थ और यह क्षण-क्षणमें नष्ट होने वाला धर्म जब दोनों एक हो गए तो जिस ज्ञानसे हमने नीले पीले पदार्थोंको जाना उसी ज्ञानसे क्षणिक भी जानने में आ जायगा, क्योंकि दोनों एक हैं। यह रूप और यह क्षणिकपना ये दोनों एक हैं तो जब हमने नील पील आदिक पदार्थ जाना तो यह क्षणिक भी ज्ञानमें आ जायगा फिर उसके लिए अनुमान क्यों बना ? बौद्धजन ऐसा अनुमान बनाते हैं कि जगतके सब पदार्थ क्षणिक हैं सत्त्व होनेसे। जो क्षणिक नहीं है वह पदार्थ ही नहीं है ऐसा अनुमान बनाकर पदार्थको क्षण-क्षणमें नष्ट होने वाला सिद्ध करनेका प्रयास क्यों करते ? जिस ज्ञानसे नीले पदार्थ जान लिए गए उस ही ज्ञानसे क्षणिकपना जान लिया जायगा। क्योंकि नील आदिक पदार्थ और पदार्थमें रहने वाला क्षणिकपना ये दोनों अभिन्न हो गये।

नीलाकारसे क्षणिकताका अभेद माननेपर अनेक युक्तियोंसे भी दोषका अनिवारण — यदि कहो कि नहीं नीलादिक और क्षणिकत्व अभिन्न होते तो हैं, पर क्षणिकत्वको प्रत्यक्ष नहीं जानता इसलिये क्षणिकत्वका अनुमान बनाना पड़ता है। तो अभिन्न होनेपर भी क्षणिक नहीं जाना गया तो नील आदिक पदार्थ भी न जाने जायें। जब वह भिन्न है एक है तो एक न जाना गया तो दूसरा भी अज्ञात रहा। शायद यह कहो कि पदार्थमें अनेक स्वभाव हैं, अनेक स्वभावका पदार्थ उसका आकार तो आ गया पर ज्ञानकी जितने अंशमें कुशलता है, संस्कार है, उसका तो निश्चय बनता है औरका नहीं बनता अर्थात् क्षणिकपना और ये नील आदिक रूप ये दोनों यद्यपि एक हैं और ये सबके सब ज्ञानमें आ गए तिसपर भी जिस चीजका अभ्यास पड़ा हो उसका तो निश्चय होता है प्रत्यक्षसे और जिसका अभ्यास नहीं होता उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निश्चय नहीं होता। उस नील आदिक पदार्थका तो अभ्यास है इसलिए उसका तो निश्चय बन जाता है कि यह नीला पदार्थ है पर क्षणिकपनेका निश्चय नहीं बनता कि यह क्षणिक है। तो इसपर पूछ रहे हैं कि यह जो निश्चयपना है यह भी साकार है या निराकार ? उसका भी कुछ आकार आया या नहीं ? अगर आकार आया तो वहाँ भी प्रश्न करेंगे कि उस आकारसे भी क्षणिकपना भिन्न है या अभिन्न ? तो उसमें भी दोष आ जायगा।

अमूर्त ज्ञानमें मूर्त पदार्थकी छाया आदिक—जरा कुछ विचार कीजिये इसमें क्या आपत्ति आती है यदि यों परख लिया जाय कि मैं ज्ञान स्वरूप हूं। ज्ञान मेरा स्वभाव है। जानना मेरा काम है। मैं अपने कामको जानता रहता हूँ। इसमें पदार्थ प्रतिविम्बित हों तब ही जाने ऐसा नहीं है क्योंकि पदार्थकी छाया, पदार्थका प्रतिबिम्ब मूर्तिकमें पड़ेगा अमूर्तमें नहीं चूँकि ज्ञान अमूर्त है। ज्ञानमें रूप रस कुछ भी नहीं है, उसमें फोटो क्या पड़ेगा ? दर्पण हो, चिकनी भींट हो या कुछ भी चमकदार चीज हो उसमें पदार्थका फोटो आ गया तो वह पदार्थ भी मूर्तिक है पिण्ड है, रूप, रस वाला है और दर्पण भी पिण्ड हैं, रूप, रस वाला है। तो मूर्तिकका मूर्तिकमें तो प्रतिविम्बत आ जायगा पर अमूर्तिकमें प्रतिविम्ब नहीं आता। जैसे आकाशमें भी क्या फोटो आता हैं ? इतने पदार्थ पड़े हैं इनका आकाशमें फोटो तो नहीं आता क्योंकि आकाश अमूर्त है। तो आकाश की ही भांति हम आप सब जीवोंका स्वरूप अमूर्त है। जैसे आकाश छेदसे छिदता नहीं, भेदसे भिदता नहीं, पकड़नेसे पकड़ा जाता नहीं ऐसे ही यह आत्मा और ज्ञान छेदेसे छिदता नहीं, पकड़ेसे पकड़ा जाता नहीं। कभी कोई शस्त्र चला दे तो शस्त्र चलानेसे आत्मा नहीं छिदता। यह जो पोद्गलिक शरीर है इस के टुकड़े हो गए, पर आत्माका टुकड़ा नहीं हो सकता। क्योंकि वह एक अमूर्त, स्वतंत्र परिपूर्ण पदार्थ है हाँ उसका प्रवर्तनमात्र आधार विगाड़ देनेसे आत्मा यहाँसे निकल जायगा, कहीं पहुंचेगा पर आत्मा भेदसे भिदता नहीं।

तद्भवमरणमें कष्ट होनेका कारण—आत्माको मरण समयमें कष्ट क्यों होता है ? कष्ट यों होता कि इसने आपका निर्णय नहीं बनाया कि मैं इस देहसे भी न्यारा हूं और यह समागम मिलता है उस समागमोंसे भी मैं न्यारा हूँ। जो भी धन वैभव मकान इज्जत कुटुम्ब आदिक हैं इन सबसे न्यारा हूँ। यहांसे निकल जानेके बाद मुझे कोई टोटा पड़नेका नहीं। ऐसा निर्णय नहीं है आत्माको इस कारण मरण समय में क्लेश होता है, और वहाँ देखो तो क्या टोटा है। यहाँ ये सब पदार्थ हैं और चले गए यहाँसे छोड़कर तो उससे मेरा क्या बिगाड़ ? जिन लोगोंसे परिचय है। जिनमें कुछ नाम है, इज्जत है वे तो सब माया रूप हैं। यहाँसे चले गए तो आखिर थे तो सब मायामय असार, अपने कर्मोंके पूरे जन्म-मरणके भारमें रहने वाले। यहाँसे हट गए तो उससे मेरा बिगाड़ क्या ? और ऐसा विचारने वाले जो लोग होंगे वे मरण

http://sahjanandvarnishastra.org/

करके यहाँसे हटकर जायेंगे तो इससे भी अच्छा समागम उन्हें मिलेगा। जो ऐसे ज्ञानी और वैराग्य चित्तके पुरुष हों उनका बिगाड़ क्या ? बिगाड़ तो उनका है जिन्होंने ऐसा दुर्लभ मनुष्य जन्म पाया, श्रेष्ठ जाति कुल धर्म पाया और फिर भी इसका लाभ न उठा सके। अपने आत्माका ज्ञान न कर सके और यहाँसे छूटकर अब जाने लगे तो उनका बिगाड़ है। जो ज्ञानी है, विरक्त है आत्म स्वरूपसे परिचय है उनका मरण से भी बिगड़ता कुछ नहीं है।

ज्ञानकी उदारता यह ज्ञान अमूर्त है। ज्ञानमात्र मैं आत्मा हूँ। यह ज्ञान स्वयं निराकुल है, उदार हैं और धीर है। ज्ञान ज्ञानकी धाराको ही पैदा करता रहता है अतएव वह धीर है, अपने मार्गसे विचलित नहीं होता। क्षोभमें नहीं आता और उदार है। यह ज्ञान जानता तो रहता है मगर किसी विभूतिको नहीं अपनाता है न घृणा करता है। यह कितनी बड़ी उदारता है कि पदार्थका वह बिगाड़ नहीं कर रहा किसी पदार्थसे हमें घृणा होगी तो हम उसका बिगाड़ करेंगे। विनाश करेंगे। तोड़ फोड़ करेंगे, और जो चीज प्रिय होगी उसका हम इससे भी ज्यादा तोड़ फोड़ करेंगे। भोजन कितना इष्ट है तो लोग उसका कितना तोड़ फोड़ कर डालते हैं। जब खाते हैं तो उसे चकनाचूर कर देते हैं। जब गलेके नीचे उतरता है तो उस समय भोजनकी जो स्थिति होती है वह घृणास्पद होती है। तो जो प्यारा है, इष्ट है, उस इष्टका हम बहुत तोड़ फोड़ करते हैं। कोई साल डेढ़ सालका छोटा बच्चा हो, उससे यदि आपका ज्यादा प्रेम हो जाय तो उस बच्चेकी आफत आ जायगी। आप उसे कहीं ऊपर उचकायेंगे कहीं उसके हाथ पैर हिलायेंगे। उसके ऊपर तो आफत भी आ जायगी। तो जो इष्ट पदार्थ है उसका बिगाड़ कर दिया जाता है। तो ज्ञान इतना उदार है कि इन पदार्थोंको जाना करता क्योंकि न किसीको इष्ट मानता और न अनिष्ट। यदि किसी को इष्ट माने तो उसके ऊपर आफत आ जायगी। ज्ञान तो उदार रहता है क्योंकि मात्र वह जाननहार है। ऐसा धीर उदार गम्भीर निराकुल ज्ञान वह अपने स्वरूपमें आकार ग्रहण नहीं करता किसी चीजका, इतना भी क्षोभ इस ज्ञानमें नहीं आया करता। यह तो अपने स्वरूपसे पूरा सुरक्षित ज्योंका त्यों रहता हुआ पदार्थका विज्ञान करता रहता है।

स्वरूपसे ज्ञान द्वारा व्यवस्था और अर्थाकारसे ज्ञानकी अव्यवस्था—मुख्य बात तो यह है कि ज्ञानका बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग कारणसे जो योग्यता बनी है उस योग्यताके अनुसार ज्ञान पदार्थको जानता रहता है। ज्ञानमें इतनी योग्यता है कि वह समस्त विश्वको लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जानता रहे, लेकिन जब यह जीव विषय कषायोंमें अपना उपयोग फसाता है तो विषय कषाय विकार विभावके कारण ज्ञानपर आवरण आ जाता है। निमित्त दृष्टिसे तो कर्मका आवरण है और आन्तरिक दृष्टिसे विकारका आवरण है रागद्वेष मोहके विकार आनेसे आत्मामें ज्ञानका विकास

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रुक गया है। अब उस परिस्थितिमें ज्ञानावरण प्रकृतिकी कमी हो, क्षयोपशम हो उतनी इस ज्ञानमें योग्यता आती है और उस योग्यताके अनुसार यह पदार्थोंको जानता है। साकार ज्ञान माननेपर यह आपत्ति आती है कि ज्ञान जब इन पदार्थोंका आकार ग्रहण करता है तो सारे पदार्थोंका आकार क्यों नहीं ग्रहण करता। यह पदार्थ यदि यदि अपना आकार ज्ञानको सौंपा करता है तो सारे पदार्थ अपना आकार ज्ञानको क्यों नहीं सौंप देते ? फिर तो जब सब पदार्थोंका फोटो आ गया तो यह निर्णय भी न बन सकेगा कि यह अमुक चीज है यह अमुक सभी पदार्थोंका प्रतिविम्ब ज्ञानमें आ गया। तो वहाँ प्रतिनियत पदार्थकी व्यवस्था नहीं बन सकती। कि यह अमुक है और ऐसा निश्चय करने वाले ज्ञानको अपनेसे दोष बचानेके लिये। निराकार मानोगे तो फिर उसमें भी नियम नहीं बन सकता। निराकार होनेपर भी योग्यताके कारण प्रतिनियत पदार्थके ज्ञानकी व्यवस्था बना करती है। आकार प्रतिविम्बित होता है ज्ञानमें और फिर ज्ञान जानता है इतनी कल्पनाका श्रम करनेकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञान है, निराकार है और वह पदार्थोंको जानता रहता है।

ज्ञानकी साकारताका दिग्दर्शन - जैनदर्शनमें ज्ञानको जो साकार कहा है उसका यह अर्थ नहीं है कि पदार्थका प्रतिविम्ब आता है। कहा जरूर है कि ज्ञान तो साकार होता और दर्शन निराकार होता। निराकार उपयोगका नाम दर्शन है और साकार उपयोगका नाम ज्ञान है, पर वहाँ साकारताका अर्थ ज्ञानमें पदार्थोंकी फोटो आ जाय यह नहीं है, किन्तु ज्ञानके कामकी शैली यह है कि वह पदार्थोंका आकार जाने, पदार्थोंकी विशेषता समझे, इस प्रकारसे उनके आकार मुद्रा, विशेषताके जानने का ही नाम आकार है। ज्ञानका कोई ढङ्ग बनता है, नानारूपसे प्रतिभात होता है इसका नाम है आकार। ऐसी साकारता तो ज्ञानमें है परन्तु ज्ञानमें पदार्थका फोटो आये ऐसी बात नहीं है।

स्वपरव्यवसायी ज्ञानमें प्रमाणताकी सिद्धि – यह सब प्रकरण इस बात पर चल रहा है कि प्रमाणताका लक्षण आचार्यदेवने यह कहा था कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण होता है। तो इसके विशेषणमें विलोम पद्धतिसे प्रत्येक शब्दका सार्थक्य बताया है। ज्ञान प्रमाण है किन्तु जो अचेतन है, अज्ञान है वह प्रमाण नहीं बनता। फिर बताया कि अर्थका निश्चय प्रमाण है, फिर बताया अपूर्व अर्थका निश्चय प्रमाण है। अब उसी सिलसिलेमें यह बताया जा रहा कि स्वका व्यवसायी ज्ञान प्रमाण है और जो स्वका निश्चय न करे वह ज्ञान पर पदार्थोंका भी निर्णय नहीं बना सकता। तो स्वका निश्चय करने वाला ज्ञान हुआ करता है। इसके विरोधमें अचेतनवादियोंने यह कहा कि चूँकि ज्ञान अचेतन है, प्रकृतिका धर्म है, आत्माका स्वभाव नहीं है अतएव ज्ञान खुदका निश्चय नहीं करता। उसके बाद साकारज्ञानवादियोंने यह कहा कि ज्ञानमें पदार्थका आकार आता है इससे

Version 1

ज्ञान जानता है। ज्ञान स्वव्यवसायी नहीं है। जिस पदार्थका आकार आया करे वह अपना क्या निश्चय करेगा ? जैसे दर्पण आदिक। तो इन दोनों मन्तव्योंका निराकरण करते हुए यह बताया कि ज्ञान प्रमाण है और पदार्थोंका आकार जानता रहता है अपने आपको भी उन पदार्थोंके आकार रूप बना ले, पदार्थरूप बनाले ऐसा नहीं हुआ करता। इस प्रकार स्व और परका निर्णय करने वाला ज्ञान प्रमाण होता है।

भौतिकवाद और उसकी अयुक्तता - ज्ञानकी इन विशेषताओंको सुनकर अब एक नास्तिक-सिद्धान्त जो आत्माको भी और ज्ञानको भी तत्त्व नहीं मानते और मानते यह हैं कि केवल जो दिख रहा है यही तत्त्व है और जो यह शरीर है सो सब कुछ है। यह शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे उत्पन्न होता है और इन चार चीजोंके मिलनेसे ऐसी कोई अद्भुत बिजली सी उत्पन्न होती है जिसके कारण यह जानता रहता है और सारी व्यवस्था बनाता है। यह विज्ञान अपने आपका स्वसम्वेदन नहीं कर सकता क्योंकि वह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतोंका परिणमन है जैसे कि दर्पण ! दर्पण पृथ्वी, जल अग्नि वायुका एक विपरिणमन विशेष है, तो दर्पण खुदका भी निश्चय नहीं करता। यह सिद्धान्त चारुवाक लोगोने रखा। उत्तरमें आचार्यदेव कहते हैं कि तुम्हारा हेतु सिद्ध नहीं है तुम्हारा हेतु है कि यह भूतका परिणमन विशेष है भूतका अर्थ है पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। भूतका परिणमन है ज्ञान। यह बात आयत असंगत है क्योंकि यदि यह ज्ञान पृथ्वी आदिकका परिणमन होता तो बाह्य इन्द्रियसे इसका ज्ञान होना चाहिए था। जैसे शरीर पृथ्वी आदिक भूतोंका परिणमन है तो शरीर आँखों दिखता। इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श भी पाया जाता है। तो जैसे यह शरीर मूत विषयोंसे उत्पन्न होता है अतएव बाह्य इन्द्रियका विषय है। यों ही ज्ञान यदि पृथ्वी आदिकसे उत्पन्न होता है तो इन्द्रियके द्वारा ज्ञानका स्वरूप जान लिया जाना चाहिए था पर इन्द्रियके द्वारा ज्ञानका स्वरूप ज्ञात नहीं होता अतएव इतना तो निर्णय है कि ज्ञानभूतका परिणमन विशेष नहीं है।

सूक्ष्म भूत परिणमनका तर्क - यदि कहो कि नहीं, ये शरीर आदिक तो स्थूलभूत धर्म हैं और ज्ञान सूक्ष्मभूत परिणमन है इस कारण बाहरी इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान नहीं जाना जाता। तो इसपर आचार्य पूछते हैं कि वह जो सूक्ष्मभूत विशेष परिणमन है। वह सूक्ष्म परिणमन विशेष क्या चैतन्यसे सजातीय होकर ज्ञान के उत्पन्न करनेका कारण बना ? या चैतनसे विजातीय बनकर विपरीत बनकर ज्ञान के उत्पन्न करनेका कारण बना। यदि कहो कि चेतन उस जाति वाला बन कर वह सूक्ष्मभूत परिणाम ज्ञानको उत्पन्न करता है तो चलो नाममें ही तो फर्क रहा। बात तो वही हुई जो तथ्यकी है और फिर भूतका अर्थ अगर बदल दें तो बिल्कुल सीधा सिद्धान्त बन जायगा। भूत मायने पृथिवी आदि है और प्राणी भी है यहाँ भूतका अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्राणी करिये तो प्राणीका वह परिणाम है ज्ञान जो ज्ञान चैतन्यका सजातीय है, अगर कहो कि विजातीय है तो विजातीयसे विजातीयकी उत्पत्ति नहीं होती । तो ज्ञान उत्पन्न ही न होगा । यों ज्ञान स्वतंत्र है और वह स्वपर प्रकाशक है । वह अपने आपको भी जानता और परको भी जानता यह निर्णय रखना चाहिए ।

चैतन्यस्वजातीय सूक्ष्म भूतपरिणमनका भाव—भौतिकवादमें आत्माका नास्तित्व सिद्ध किया जा रहा था जिसमें उन्होंने यह युक्ति दी कि है तो यह चैतन्य भौतिक, पर घट-पट आदिक की तरह दिखनेमें इस कारण नहीं आता कि वह सूक्ष्म भूतका परिणाम है । ये सब दिखनेमें जो आ रहे हैं यह तो है स्थूल परिणमन, पर यह चैतन्य है इस पृथिव्यादिक भूतका सूक्ष्म परिणमन । इस कारण चैतन्य दृष्टिमें नहीं आता, किन्तु है कुछ नहीं । इसपर याने पृथिवी, जल, अग्नि, वायुके समुदायके कारण यह एक चेतना जग गयी है । इसके उत्तरमें पूछा जा रहा है कि वह जो तुम्हारा सूक्ष्म भूतपरिणमन है जो कि चैतन्यको उत्पन्न करने वाला माना जा रहा है वह चैतन्यकी जातिका है या चैतन्यसे विरुद्ध जातिका है ? यदि चैतन्य जातिका है तो यही बात तो तत्त्वकी है । है कोई ऐसा सूक्ष्म प्राणविशेष जो अचेतन द्रव्यसे अलग है ? जिसमें रूप रस, गन्ध, स्पर्श नहीं है, जो इन बाहरी इन्द्रियोंके द्वारा जाननेमें नहीं आता केवल स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे ही जाना जा सकता है ऐसा चैतन्य विशेष अचेतनसे अलग है और उसका लोक परलोक है इस भवमें है सो सब जानते हैं, पर मरकर उसका परलोक भी होता है । उस परलोकके स्वामीपनेसे वह अनुमेय है, उसका दूसरा नाम है आत्मा । वही ज्ञानका उपादान कारण है यह माना जाना चाहिये क्योंकि अब चारुवाकोंने भी उस विज्ञानको चैतन्यकी जातिका बताया है ।

ज्ञानको चैतन्यविजातीय परिणमन माननेपर आपत्ति—यदि यह ज्ञान चैतन्यसे विजातीय है तो जो चारुवाक लोग पृथिवी, जल, अग्नि, वायुके सम्बन्धसे जीवको उत्पाद मानते हैं । जीवस्वरूप अन्य कुछ नहीं है । न पहिले था न आगे रहेगा पृथिवी वगैरह मिल गए सो जीव बन गया, ऐसा मानते हैं चार्वाक लोग । तो वह जो ज्ञान बन गया वह चेतना जातिसे यदि विलक्षण है, तो विलक्षण उपादान नहीं बना क्योंकि विजातीय पदार्थसे विजातीयकी उत्पत्ति नहीं हुआ करती । जैसे आगसे जल उत्पन्न तो नहीं होता ऐसा भौतिक वादियोंने माना है । उनके ये चार तत्त्व हैं, पृथिवी जल, अग्नि और वायु । इनके अतिरिक्त और कुछ पदार्थ नहीं मानते भौतिकवादी लोग । जो इन्द्रियसे जाननेमें आये बस वह ही सब कुछ है, इससे अतिरिक्त और कुछ भी सूक्ष्म चैतन्य या अन्य कुछ नहीं है । तो तुमने भी यह माना कि आगसे जल नहीं बनता । क्योंकि आगकी जाति न्यारी है जलकी जाति न्यारी है तो इस तरह अचेतनसे चेतन भी नहीं बन सकता क्योंकि अचेतनकी जाति न्यारी है चेतनकी जाति न्यारी है । अचेतन है जड़ गैर समझ और ज्ञान है समझ वाला तो अचेतनसे अगर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानकी उत्पत्ति मान लोगे तो तुम्हारे चार तत्त्व भी नहीं रह सकते। वहाँ भी यह कहा जा सकता है कि जब अचेतनसे ज्ञान तक बनने लगा तो आगसे जल बन जाये तो क्या बात है। जलसे हवा बन जाय, तो तुम्हारे वे चार तत्त्व तो नहीं मिले।

सत्त्वकी सजातीयतासे अर्थ क्रियासे अनियामकता यदि कहो कि अचेतन भूत भी तो सत् है और ज्ञान भी सत् है तो सत् सत् होनेसे सजातीय हो गए ज्ञान और ये अचेतन। पृथिवी आदिकका पिण्ड, और ज्ञान जब एक जाति हो गए तो ज्ञानका उत्पाद अब पृथिवी चतुष्टयसे बन जायगा। ऐसा कहते हो तो तुम्हारे इन चार तत्त्वोंके लिए भी यही दोष लगेगा। वहां भी सत्वके कारण पृथिवी, जल, अग्नि, वायु सजातीय हैं। पृथिवी, जल, अग्नि' वायु ये भी सत् हैं। यदि है की दृष्टिसे सब सजातीय है तो किसीसे भी कुछ भी पदार्थ उत्पन्न हो बैठेगा। तुम्हारे भी चार तत्त्व न रहेंगे। देखिये ! जैन शासनमें तो पृथिवी, जल, अग्नि, वायु भी जुदे-जुदे द्रव्य नहीं माना अर्थात् जाति चारोंकी एक है क्योंकि ये चारोंके चारों पुद्गल हैं, रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं। किसीमें रूप ज्यादा नजर आता, किसीमें रस, किसीमें गंध और किसीमें स्पर्श। जैसे पृथिवीमें गंध ज्यादा मालूम होता है और जलमें रस मालूम होता अग्निमें रूप मालूम होता और वायुमें स्पर्श मालूम होता, लेकिन इन चारोंमेंसे जहाँ एक भी हो वहाँ चारों ही हुआ करते हैं। यद्यपि हमें हवाका रस नहीं मालूम होता, लेकिन जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्शमेंसे कुछ भी एक हो वहां चार अवश्य होते हैं। तो ये सबके सब पुद्गल हैं अतएव कहो कभी जलसे आग बन जाय, आगसे हवा बन जाय, जल बन जाय जो चाहे बन सकता है। चार तत्त्व ये न्यारे-न्यारे नहीं हैं, किंतु चारुवाक लोग तो चार तत्त्व इन्हें न्यारे-न्यारे मानते हैं। जो आँखोंसे, इन्द्रियसे सीधा पहिचाने, नजर आने लगे बस वह उनका तत्त्व है और जो इन्द्रियसे ज्ञानमें नहीं आता वह उनका तत्त्व नहीं है। तो ये ज्ञान अचेतनसे सिद्ध नहीं होते यह सिद्ध किया जा रहा है।

असाधारण लक्षणसे ज्ञानके आश्रयभूत आत्माकी सिद्धि -- यह आत्मा प्रमाणसे सत् है, वही आत्मा उपादान कारण है। ज्ञानका उपादान यह शरीर नहीं है पृथिवी आदिक ४ तत्व नहीं हैं क्योंकि जो जिससे विशिष्ट लक्षण रखता है वह उससे वास्तवमें जुदी ही चीज है। जैसे चारुवाकोंने खुद माना है कि जो अग्निका स्वरूप है वह पृथिवी, जल, वायुसे विलक्षण है। तो वह अलग चीज हुई। तो इस प्रकार तत्वज्ञान पृथिवी आदिकसे विलक्षण भिन्न चीज, भिन्न लक्षण हैं। अतएव चेतनता इस शरीरसे न्यारी वस्तु है।

नास्तिकताका स्वरूप जो शरीरको ही यह मैं हूं ऐसा माने उसीका नाम तो नास्तिक है। नास्तिकका अर्थ है जो बात जैसी नहीं है वैसी जो मान रहा है जो है जो है उसे न माने जो अस्तिको न माने सो नास्तिक है। लोगोंने नास्तिककी व्या-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ख्या अपने अपने पक्षसे कर रखी है। जो हमारे धर्मको न माने सो नास्तिक जो हमारे धर्म शास्त्रको न माने सो नास्तिक। जो वेदकी निन्दा करे सो नास्तिक। यों व्याख्या बना रखी है पर शब्दसे यह अर्थ नहीं निकलता। शब्दसे अर्थ यह निकलता कि जो अस्ति है उसे न माने सो नास्तिक अब तो अनन्तानन्त जीव नास्तिक हो तो हैं अरे जिनके मन नहीं है वे अस्तिको मान ही क्या सकते हैं। जिनके मन है समझ है ऐसे पुरुष भी इन्द्रिय द्वारा जो कुछ ज्ञात होता है उसे ही मानते हैं पर जो मना करे आत्माको ऐसा मना करने वाली है जो कुछ इस शरीरसे भी विलक्षण चीज है, लो उसका ही नाम आत्मा है।

आत्माकी भूतचतुष्टयसे विलक्षणताका विवरण—तो यह चैतन्य इन पृथ्वी आदिक तत्त्वोसे विभिन्न जातिका तत्त्व है। चेतनका स्वरूप है ज्ञान दर्शनोपयोग जो कुछ अपने अन्तरङ्गमें भी प्रतिभास आ रहा है और जो समस्त बाह्य तत्त्वोंका भी प्रतिभास किया करता है ऐसा ही उपयोग स्वरूप यह चैतन्य है। तो आत्माका तो चैतन्य स्वरूप है और पृथ्वी,जल, अग्नि वायुका और और कुछ स्वरूप है। जैसे पृथिवी का स्वरूप है धारण। किसी वस्तुको अपने पर धर लेना। जिसपर कुछ चीज रखी जा सके वह है पृथिवी। जिसपर चलते वह है पृथ्वी। ये काठ, चौकी दरी वगैरह जो कुछ हैं ये सब पृथिवी हैं। वनस्पति तत्त्व नहीं माना चारुवाकोंने। जो पिण्डात्मक हो, घन हो वह पृथिवी है। फल-फूल काठ पत्थर जो भी घनरूप हैं वह पृथिवी है, उस का काम है धरना। किसी भी पदार्थको अपनेपर धर लेना। जलका काम वे ईरण, जो नीचेकी ओर चलना जो बह सके, ढल सके वह सब जलतत्त्व है। और, अग्निका काम है उष्णता और हवाका काम है बहना चलना। तो ये लक्षण है भूतोंके और आत्माका लक्षण है ज्ञान दर्शन। इन दोनोंको एक क्यों किये जा रहे हो ? आत्मा इस पृथिवी आदिक पिण्डसे जुदी वस्तु है पृथिवी आदिकमें। ज्ञान दर्शन उपयोग नहीं नहीं है क्योंकि ये बाह्य इन्द्रियोंके द्वारा इनमेंसे अनेक पुरुषोंके द्वारा जाननेमें आ रहे हैं। जिसमें ज्ञान दर्शन उपयोग होता है बाह्य इन्द्रियसे नहीं जाना जा सकता। इन बाह्य इन्द्रियोंसे तो ये ही पदार्थ जाने जा रहे हैं जो पुद्गल हैं। रूपी हैं, पिण्डभूत हैं जो ज्ञान दर्शन उपयोग वाला है वह साधारण जैसे अनेक जिस चाहे पुरुषके द्वारा नहीं जाना जा सकता। जिनकी साधना हो, अन्तः तत्त्वज्ञान हो ऐसे ही पुरुष उस आत्माको समझ सकते हैं। वह आत्मा इस शरीरसे न्यारा है ज्ञान स्वरूप है और वह ज्ञान अपने आपका भी निर्णय रखता है और पर पदार्थोंका भी निर्णय रखता है।

नास्तिकतामें शान्तिसे गुजारेका अभाव—भैया बाह्य दृष्टि साधारण दृष्टि रखकर तो जो कुछ कोई वर्णन करता है वह वर्णन बड़ा प्रिय लगता है। क्या है जीव कुछ नहीं है; जब तक शरीर है तब तक हम है तो जब तक जिन्दा है तब तक क्यों व्यर्थमें कष्ट उठाये। खूब खावें, पियें। मौजसे रहें, संयमका भूत क्यों शिरपर

लादना। व्रत तपश्चरणके कष्ट सहना? इससे कुछ भी लाभ नहीं है। पृथिवी आदिक मिल गई तो एक बिजली सी बन गई। इसमें अन्य कुछ नहीं है, क्यों कष्ट करें यह बात कितनी प्रिय और अच्छी लगती है। क्योंकि अनादिकालसे विषय कषायकी वासना लगी हुई है और उसके अनुकूल ही ये सब बातें हैं तो प्रिय तो लगेगी हो। लेकिन इतना भी तो नहीं है कि तुम्हारा चित्त जिनको चाहता है पञ्चेन्द्रियके विषयों को लौकिक इज्जतको पोजीशनको इससे लगे हुए भी शान्ति मिले इतना भी तो नहीं है।

अशान्तिकी विधिसे शान्तिकी अशक्यता थोड़ी देरको मान लो न सही आत्मा अलग। जो शरीर हैं, पृथिवी आदिकका पिण्ड है उस हीमें ज्ञान है। मान भी लो नहीं है कुछ, ज्ञानका उपादानभूत आत्मा और, ऐसा मानकर यह तो अच्छी बात है ना कि हमारे सुखमें कमी न आये। मौजसे खावें, पियें, न्याय अन्याय कुछ नहीं, जिसमें विषयोंमेंके साधन जुड़ें वह काम करें और अपनेको किसी बातसे हैरान तो मत करें। इसी बातके लिए ऐसा माना जाता है कि आत्मा कुछ नहीं है, लेकिन इसपर भी तो और इस रास्तेमें चलनेपर भी तो शान्ति नहीं है, नही है लो आत्मा। खूब लगे रहें विषयोंके साधनोंमें जो चाहे न्याय अन्याय करे, जैसा चाहे रहें, लौ मौज खूब, पर मौज कहाँ मिलती है? अनुभवमें तो खूब आ रहा कि मौज किसीको कहीं नहीं मिल रही। सभी विषयोंकी होड़में लग रहे हैं। बढ़ाते जावो सम्पदा। और प्रायः करके यह सम्भव है कि खूब बढ़ाते जावो सम्पदा। एक दिन वह आ जायगा कि यह घोषणा हो जायगी कि जितना जो कुछ है वह सब राष्ट्रकी सम्पदा है। किसीका कुछ नहीं है। ऐसे दिन आनेमें देर नहीं मालूम हो रही। ऐसा वातावरण ही अब चल रहा है। तो विषयोंके साधनोंके संचयमें भी तो कोई शान्ति नहीं नजर आ रही है। तो यहाँ भी तो कुछ न्यायसे रहित, रहनेमें कुछ लाभ नहीं मिल पाता है, उल्टी अशान्ति रहती है।

शान्तिकी विधिसे ही सर्वत्र शान्तिकी सम्भवता— उस स्थितिकी बात कर रहे हैं कि जब कोई यह मान रहा हो कि आत्मा कुछ नहीं है, जो कुछ है सो शरीर है। इसीमें चैतन्य है, इसीमें ज्ञान है, जीव कुछ नहीं है। अच्छा नहीं है न सही अब करेंगे क्या? मनमानी प्रवृत्ति करेंगे, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, लूटमार, ये काम यदि किए जायेंगे तो सुख मिल जायगा क्या? पिटाई और होगी। तो सुख यहाँ भी नहीं। आत्मा न भी माने फिर भी सदाचारसे रहनेमें ही सुख है। और मान लो कि पृथिवी आदिकके मिलनेसे एक बिजली बन गयी उतनी देरको सही चैतन्य, मगर चैतन्यपर जो गुजरता है, जैसा जो कुछ बनता है, बात तो उस तरह बनेगी। फर्क इतना ही तो आया कि यह चैतन्य पहिले न था और चैतन्य आगे भी न रहेगा, शरीर बिखरा और चैतन्य समाप्त! इतनी ही तो माननेकी बात आयगी, पर जब तक यह चैतन्य है तब तक तो जो इसके हिसाबसे बात होनी है वह ही होगी। जैसे सुख दुःख,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चैतन्यको माने पहिले और बादमें तब भी वर्तमान आनन्दके लिये जो करना चाहिए सो ही तो करना होता है, वही इसे भी करना चाहिए। चाहिए तो यह चैतन्य जो बिजली भी हुआ हो वह अपने आपके स्वरूपको चेतने लगे। आगे पीछे है या नहीं, यह बात तो आगेकी है पर वर्तमानका आनन्द लेना है तो अपने स्वरूपको चेतना चाहिए और तब यह स्वयं विदित करने लगेगा कि चैतन्यस्वरूप कोई पदार्थ स्वतन्त्र न्यारा है। विजातीयसे विजातीयकी उत्पत्ति नहीं होती। पृथिवी आदि अचेतन हैं, अचेतन पदार्थोंसे चेतनकी उत्पत्ति नहीं होती।

चार्वाकका आशय – इस प्रसङ्गमें भौतिकवादी अपना फिर मन्तव्य रख रहे हैं कि देखिये ! ज्ञानदर्शन उपयोग विशेष के अलावा कोई ज्ञान दर्शन वाला पदार्थ है, आत्मा है यह तो प्रकरणसे समझमें नहीं आ रहा। हाँ, ज्ञान दर्शन उपयोग समझमें आ रहा है सो उसे हम कब मना करते हैं। ज्ञान दर्शन है, पर वह पैदा होता है पृथिवी, जल, अग्नि, वायुके सम्बन्धसे। ज्ञान स्वभाव वाला कोई पदार्थ न है, न था, न होगा। यह तो सब शरीरसे बात बन रही है, शङ्काकार कह रहा है, इसलिए तुम्हारा जो यह कहना था कि पृथिवी आदिकसे विभिन्न विशिष्ट लक्षण वाला कोई आत्मा है सो तो है ही नहीं क्योंकि वह आत्मा प्रत्यक्षसे तो किसीको दिखता नहीं है। जैसे हम इन रूप आदिकवान पदार्थोंका निर्णय रखते हैं, यह चौकी है, रूप, रस, गंध, स्पर्श वाली है, इस तरह आत्माके स्वरूपका कोई विवरण नहीं है, कोई निर्णय नहीं है और न अनुमानसे आत्माकी प्रतीति है, अनुमान तो प्रमाण ही नहीं होता। यह तो ख्याल ही ख्याल है, कुछ भी अनुमान कर लो, प्रमाण तो केवल प्रत्यक्ष है सो प्रत्यक्ष से आत्मा कुछ नजर नहीं आ रहा। आत्मा नामकी कोई चीज नहीं और आत्माको सिद्ध करने वाला कोई अनुमान भी नहीं, अतएव आत्माका धोखा मत करें। क्यों व्यर्थमें अपनेको कष्टमें डालते मौजसे रहो, यह बात चारुवाक लोग कह रहे हैं।

आत्माकी अहंप्रत्ययवेद्यता – चारुवाक जनोंकी अविचारितरम्य शिक्षा सुननेमें तुरन्त तो अच्छी लगती है पर इसपर विचार करें तो यह ठीक संगत नहीं बैठ सकता, क्योंकि आत्माकी प्रतीति तो अहं प्रत्ययसे ही हो रही है। प्रत्येक जीव अपने आपमें अनुभव कर रहे हैं, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं ऐसी पोजीशनका हूँ, यों जिसमें अहं प्रत्यय बन रहा है वही तो आत्मा है और ऐसा अहं अहं का अनुभव प्रत्येक प्राणीमें हो रहा है। मैं यों होऊँ, मैं ऐसा न होऊँ, मैं दुःखी होऊँगा, मैं सुखी होऊँगा, यह किसमें 'मैं–मैं' की आवाज अन्दरमें उठ रही है ? हाथमें कि पैरमें कि शिरमें ? जिसमें अहं प्रत्यय हो रहा है वही तो आत्मा है और यह बात मिथ्या है नहीं क्योंकि कोई बाधा नहीं आ रही। अपने–अपनेमें सब लोग 'अहं–अहं' का अनुभव किए जा रहे हैं। यह अहं प्रत्यय किस आधारसे उठा, इसका उपादान क्या है ? बस वही आत्मा है। यह अहं बोध शरीरके आश्रयसे नहीं होता क्योंकि अहंका अनु-

भव इन्द्रियके व्यापार बिना हो रहा है। शरीर तो इन्द्रियके व्यापारसे जान लिया जाता है। इन्द्रियके व्यापार बिना शरीरका बोध तो नहीं होता।

आत्माकी विशुद्ध प्रत्यक्षगम्यता – प्रत्येक प्राणीमें जो अनुपचरित रूपसे, सही रूपसे अहं प्रत्ययका बोध बन रहा है उसका जो विषयभूत है वही आत्मा है और अहं प्रत्ययका बोध प्रत्यक्षसे हो रहा है। प्रत्यक्षका सही अर्थ तो यह है कि अक्ष मायने आत्मा और उसका ही सहारा ले कर जो ज्ञान हो उसका नाम है प्रत्यक्ष। इन इन्द्रियसे कुछ जानते हैं और उसे प्रत्यक्ष कह बैठते हैं यह तो उपचार कथन है, यह प्रत्यक्ष नहीं है, इसमें तो इन्द्रियकी आधीनता है। इन्द्रियकी आधीनता लिए बिना केवल आत्माका ही जो बोध हो उसे कहते हैं प्रत्यक्ष। तो मैं हूँ, मैं हूँ इस प्रकारका जो बोध हो रहा है प्रत्यक्ष तो वह है। तो अहं प्रत्ययका जो विषयभूत है वह मैं आत्मा हूँ, ऐसा प्रत्येक पुरुषमें आत्माका अनुभव हो रहा है। शरीरको निरखकर यह मैं हूं ऐसा बोध करे तो वह जीव मिथ्यादृष्टि है। सभी जीवोंको अहं प्रत्ययका अनुभव अंतः आश्रयसे होता है, शरीरके आश्रयसे नहीं होता। अहं प्रत्ययके अनुभवकी शैली ही ऐसी है कि कोई अन्तः तत्त्व है, उसका आश्रय लेकर ही अहं अहंका अनुभव हुआ करता है। तो जो अहं प्रत्ययका विषयभूत है वह मैं आत्मा हूँ। पृथ्वी आदिक भौतिक पदार्थोंसे यह ज्ञान नहीं बनता। किन्तु आत्मासे ज्ञान बनता और वह ज्ञान अपने आपका भी निश्चय रखता और परका भी निश्चय रखता है।

आत्माके प्रत्यक्षगम्यकी पुष्टि चारुवाक सिद्धान्त वाले आत्माके अस्तित्व का निषेध कर रहे हैं। आत्मा प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञानमें नहीं आता, अनुमान अन्य कोई प्रमाणोंने प्रमाण नहीं अतएव आत्मा नहीं है किन्तु जो कुछ चेतना चल रही है, क्रिया चलती है, बोलचाल चल रहा है वह सब इस भूतपिण्डसे एक नवीन चेतना शक्ति उत्पन्न हुई है। पृथ्वी, जल, अग्नि वायुका सम्बन्ध होनेसे। इसपर उत्तर दिया जा रहा है कि आत्माका तो मान प्रत्यक्षसे हो रहा है। मैं सुखी हूँ, दुखी हूं, इच्छावान हूँ, इस प्रकार जो सही यथार्थ अनुपचरित अहं प्रत्यय हो रहा है वही तो आत्माका प्रत्यक्ष कर रहा है। यह अनुभव आत्माके आधारसे नहीं हो रहा। शरीरके ये रूप, रस, गंध स्पर्शके परिणमन शरीरके आधारमें हैं. पर वाञ्छा होना मैं सुखी हूं, दुखी हूँ या कुछ भी मैं के सम्बन्ध अनुभव होना यह सब आत्माके आधारमें है। अहं प्रत्यय के द्वारा शरीर नहीं जाना जाता। अर्थात् शरीरमें अहं प्रत्ययका बोध नहीं होता क्योंकि शरीर बाह्य इन्द्रियका विषय है। वह अहं प्रत्ययका विषय नहीं बन सकता।

शरीरकी अवस्थावोंमें अह प्रत्ययकी औपचारिकता – शायद यह कहो कि जब लोग यों बोलते हैं कि मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ तो इस अहंका अभिन्न आधार शरीर ही तो हुआ। देखनेमें तो शरीर ही है ना, यह

कमजोर है, मोटा है, स्थूल है, दुर्बल है ऐसा तो बोध होता है। तो शरीरके आधारसे ही तो अहंका बोध हुआ। समाधानमें कहते हैं कि यह बोध अनुपचरित नहीं है उपचरित है। जैसे कोई अन्य उपकारी हो मित्र हो या कर्मचारी तो उसके प्रति यह कहते कि जो यह है सो मैं हूँ। तो क्या वह मैं बन गया। जो अधिक उपकारी है अधिक सन्निकट है उसमें अहंका व्यवहार हो जातापर वह उपचारसे होता यथार्थ नहीं कोई नौकर बहुत ईमानदार है और बड़ा हितैषी है तो उसके प्रति भी मालिक कहता है कि यह ही मैं हूँ तो क्या ऐसा है। यह कहना उपचारसे है इसी प्रकार मैं स्थूल हूँ, मैं सूक्ष्म हूं आदिक जो अहं होते हैं वे सब उपचरित हैं। यदि कहो कि नौकर आदिक में अहं कहना यह तो उपचरित यों है कि सीधा भेद नजर आ रहा। नौकर अलग बैठा, दोनोंके भिन्न-भिन्न कार्य हैं फिर उपकारकी वजहसे ऐसा सभी बोल देते हैं कि यह मैं हूँ। तो यह जुदा जुदा मालूम पड़ रहा है उसमें मैं की बात लगाना उपचरित है, यथार्थ नहीं है। तो यही बात तो शरीरमें है। शरीर और आत्मामें भी स्पष्ट भेद है और फिर शरीरमें अहं लगाना मैं वलिष्ठ हूँ,दुर्बल हूं,स्थूल हूँ, यह सब उपचरित है।

अहं रूपसे शरीरकी अप्रतीतिकी एक घटना –भैया ! जरा अब यह भी अनुभव करिये। बहुत गहन अंधकार है जिसमें कुछ नजर नहीं आता इतने गहन अंधकारमें पड़ा हुआ कोई पुरुष है और जब वह अहं अहंका अनुभव करता है तो उस अहंके अनुभवमें तो शरीर उसे नजर ही नहीं है। स्थूल होना, दुर्बल होना यह कुछ उसे नज़र ही नहीं है जैसे कोई मोटा पुरुष है और उजेलेमें उसे शरीर दिखता है और उस शरीरमें उसे मोटेपनका ख्याल भी रहता है पर गहन अंधकारमें पड़ा हुआ पुरुष अहं प्रत्ययके द्वारा शरीरका मोटापा नहीं देख पाता, नहीं अनुभव कर पाता। भले ही वह हाथसे छुवे और जाने कि में मोटा हूँ वह बात अलग है मगर पड़े रहे शरीर जहाँ का तहाँ तो उसे अहं अहंकी भावनामें शरीरके मोटापाका कुछ पता नहीं रहता। इस से शरीरमें कोई अहंकी बात लगाना मैं मोटा हूं, दुर्बल हूँ कमजोर हूँ बलिष्ठ हूं यह सब उपचार कथन है और उपचार निमित्तके बिना हुआ नहीं करते। कोई चीज तो मुख्य हो तब उपचार होता। तो वह मुख्य आत्मा ही है।

शरीरमें अहं प्रत्ययकी मान्यताकी अव्यवहारिकता—भैया ! यहाँ यह तो कह सकते कि मेरा शरीर है पर मैं शरीर हूँ यह अनुभव नहीं होता है। जैसे यह मेरा नौकर है, यह मेरा मित्र है, मेरा अमुक है ऐसा मेरापन लेते जाते हैं वहाँ सही है मुख्य है, ऐसा ही मेरा शरीर है ऐसा प्रत्यय भेद होना यह भी मुख्य है। दर्शन शास्त्रके क्षेत्रमें बात कही जा रही है। आध्यात्मिक क्षेत्रमें तो मेरा शरीर है यह भी गलत बात है पर इस प्रसंगमें जहाँ शरीरमें अहं रूपसे अनुभव करनेका निषेध किया जा रहा और जिसका प्रयोजन केवल यह है कि अहंसे यह शरीर अभिन्न आधार न बन जाय उस दृष्टिसे यह मेरा शरीर है यह कहना तो ठीक बैठता है पर मैं दुर्बल हूं,

http://sahjanandvarnishastra.org/

मैं कमजोर हूँ, में बलिष्ट हूँ, स्थूल हूँ यह सब कहना यथार्थ नहीं है। वह सब औपचारिक कथन है।

भावात्मक वृत्तिसे भावात्मक पदार्थका निर्णय—तो अहं अहंकी भावनासे इस आत्मतत्त्वका बराबर सबको भान हो रहा है। आत्माका निषेध नहीं किया जा सकता। जिसपर बात गुजर रही है, वेदनाएँ होती हैं, चिन्ताएँ होती हैं, सुख–दुःख होते हैं ऐसा वह आधार क्या है ? वेदनाका अनुभव, सुख–दुःखका अनुभव किसी घन पदार्थमें पिण्डात्मक पदार्थमें नहीं हो सकता। यह शरीर एक पिण्डात्मक है, इसमें चेतनाका अनुभव नहीं बन सकता। अमूर्त चेतनमें अमूर्त ज्ञान धर्म है और अहं अहं के द्वारा अनुभवमें आता है। और इतनी बात तो खुद करके कोई देखे कि इस ही भीतर जो कल्पना जगती है तो किन कल्पनाओंसे शोक उत्पन्न होता, चिन्ता होती, आकुलता बनती और किन विचारोंसे निराकुलता उत्पन्न होती ? यह तो प्रयोग करके देखा जा सकता है और तब यह विदित होगा कि यह सब भावात्मक इसका परिणमन है।

भावानुसारिणी सृष्टि　भैया ! यह आत्मा जैसा भाव बनाता है वैसा ही इसपर गुजरता है। ममता, अहङ्कार ये सब भाव जीवकी बरबादीके ही कारण है और अपनेको सबसे न्यारा केवल ज्ञानस्वरूपमात्र निहारते रहना किसीको इष्ट-अनिष्ट न समझना, किसीसे रागद्वेष विकार न बनाना ऐसी समतासे जब चेतना चलती है तो इसमें निराकुलता उत्पन्न होती है। इसके विरुद्ध बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि देकर कहाँ शान्तिका अनुभव हो पाता है ? तो ऐसी दृष्टि बने कि अपना जो आनन्दका धाम है वह सर्व परसे भिन्न है। जब पर पदार्थोंसे दृष्टि हटाकर अन्तरमें दृष्टि डालो तो यह ज्ञानका जो मालिक है, जो आनन्दका धाम है उस प्रभुसे यह ज्ञान न्यारा हो गया दृष्टि द्वारा। तो जो इतना अपराध करे, अपने प्रभुके विरुद्ध मुख करके चले इतने बड़े अपराध वालेको आकुलता होना तो प्राकृतिक ही बात है। यही निर्णय हितकी वार्ता है कि हम अपने प्रभुसे विमुख होकर जब जानते रहते हैं तो उसमें आकुलता है और प्रभुके उन्मुख होकर हम यहाँ ही अपना शरण गहते हैं तो वहाँ निराकुलता हुआ करती है। इतना स्पष्ट जहाँ निर्णय है ऐसे आत्माको मना किया किया जा रहा है यह केवल और मोही जीवोंका ख्याल है कि आत्मा कुछ नहीं है।

आत्मस्वभावकी दृष्टिसे ही आत्माके परखकी सम्भवता—आत्माके प्रतिषेधके लिये जो यह कहा कि जैसे इन पदार्थोंके रूप आदिक ज्ञानमें आ रहे है, निर्णयमें आते हैं इस तरह आत्माका कोई स्वभाव निर्णयमें नहीं आ रहा वह भी बात गलत है। मैं मैं इस प्रकारसे जो भी प्रतिभास होता है अन्तरमें वही तो आत्माका स्वभाव है, वही तो चैतन्य है। अब जो स्वभाव जिस रूपसे समझमें आ सकता है उसको उसी रूपसे ही तो समझना चाहिए। हम इन इन्द्रियोंके द्वारा आत्माके स्वभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को समझना चाहें तो वह प्रक्रिया तो गलत है। यदि हम दूसरे पदार्थोंको दूसरेके स्वभावसे देखें तो किसी भी पदार्थका निर्णय नहीं हो सकता। अपनेको अपने स्वभावसे देखिये, एक चेतना भावसे देखिये।

आत्मा संसिद्धिकी एक घटना एक बार दो मित्रोंमें चर्चा चली, एक सिद्ध कर रहा था कि आत्मा कुछ नहीं है और एक सिद्ध करता था कि आत्मा है। परलोक है यह तो आत्मवादी कह रहा था और परलोक नहीं है यह अनात्मवादी कह रहा था। खूब चर्चा चली। अन्तमें निष्कर्ष रूपसे उस आत्मवादी मित्रने कहा कि यह तो बतावो कि आत्मा है या नहीं है यह बात तो अभी छोड़ दो, पर सुखी होनेके लिए अपनेको क्या करना चाहिए? हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, लालच अन्याय,अत्याचार आदि परिणामोंसे कोई सुखी हो सकेगा क्या? नही हो सकता, अनुभव बताता है। और, सदाचार से रहना, व्रत नियमसे रहना, दूसरोंके उपकारमें रहना, ये सब प्रवृत्तियाँ होंगी तो वह सुखी हो सकेगा। सदाचारसे रहते हुए जीवन गुजारना यह तो एक सम्मतिसे निर्णीत है कि सुखी होनेके लिए जरूरी है। अब इस सद्वृत्तिसे रहनेपर यदि परलोक हो तो वहाँ भी लाभ मिलेगा और न हो तो कमसे कम इस जीवनमें तो कोई सुखी रह सकेगा। जो चैतन्यके लिए कर्तव्य है उसकी पद्धति तो वही रहेगी। चाहे आत्मा परलोकमें जाय या न जाय, चाहे आत्मा इस ही भवमात्र रहा करे, सुखी होनेकी जो तरकीब है, परकी ओर राग न करना, आकर्षण न करना अपने आपकी प्रभुता देखना, अपने निकट रहना जो ऊँची पद्धतियां हैं उनसे ही इसको आनन्द प्राप्त होगा। आगे यह रहे अथवा न रहे मगर जिस जातिमें जो पद्धति बनती है वह उसी तरहसे निभेगी।

आत्मशान्तिके योग्य ज्ञानक्रियान्वयन—भैया! आत्माको उस चेतनारूप श्रद्धान करना, उस चेतनारूपसे ही ज्ञान करना और उसमें ही मग्न होना यह बात उनके लिए भी जरूरी है जो आगे आत्माको नहीं मानते, केवल इस भवमात्र ही मानते। तो उसमें आनन्द पानेके लिये उनको भी इसी तरकीबके करनेकी जरूरत है और इस तरकीबसे करे तो कुछ सत् रूप, परसे भिन्नरूप, कुछ वास्तविक बात अनुभूत होगी और उससे यह श्रद्धा भी बन सकेगी कि जो पदार्थ वास्तवमें है उसका कभी विनाश नहीं हो सकता। यह आत्मा है सदा रहेगा, इसकी परिस्थितियां बदलती रहेंगी अर्थात् आत्माके स्वभावको आत्माके ही स्वभावकी विधिसे देखें तो पता पड़ेगा कि जैसे इन भौतिक पदार्थोंका रूप रस आदिक स्वभाव है इसी प्रकार इस आत्माका स्वभाव है।

आत्मा और परमात्माके उद्बोधनकी एक घटना—यह आत्मतत्त्व अहं प्रत्ययवेद्य है। एक राजा था तो उसने अपने मंत्रीको बहुत बहुत समझाया, बड़े धर्मसे रहना चाहिये, आत्माका परलोक भी होगा, उसकी भी कुछ विधि बना लेना चाहिए।

Version 1

वह रोज मना करे कि क्या बकते हो, आत्मा-फात्मा क्या है ? कहाँ है लोक-परलोक, कहाँ है ? ईश्वर, परमात्मा भी क्या है । यह तो सब यहाँका जो कुछ है वही ठाठ है । मंत्री बहुत समझाये । एक बार राजा घोड़ेपर बैठा कहीं जा रहा था । रास्तेमें मंत्री का घर पड़ा । मंत्री बाहर खड़ा था तो राजा बोला मंत्री हमको तुम आत्मा और परमात्माकी बात समझावो; कुछ मजाक किया तो मंत्री बोला महाराज ऐसे घोड़ेपर चढ़े-चढ़े तो नहीं समझाया जाता । उतरो बैठो, घंटा दो घंटा बात सुनो । तो राजा बोला कि इतना समय तो नहीं है । तुम समझा सको तो १० मिनटमें समझा दो । तो मंत्री बोला महाराज मेरा कसूर माफ हो तो पांच मिनटमें ही समझा दूँगा । तो राजाने कहा— हाँ सारा कसूर माफ । मंत्रीने क्या किया कि राजाके हाथसे हंटर छुड़ा कर चार पांच हंटर राजाके ही मार दिये । तो राजा कहता है— अरे रे रे भगवान । तब मंत्री बोला सुनो राजन जिसमें अरे रे रे रूपसे दुःखका अनुभव किया जा रहा है वह है आत्मा और जिसे तुमने पुकारा भगवान कह कर वह है परमात्मा अब देखिये जानन देखन हारा कोई आत्मा है जीव है और इन आत्मावोंमें ये भेद नजर आ रहे हैं कि कोई विशेष रागी है, कोई कम रागी है कोई इन विभूतियोंकी उपेक्षा करता है कोई इन विभूतियोंमें लग रहे हैं । तो नाना तरहके राग भाव वाले जब नजर आये, किसीमें कम हैं किसीमें और कम रहे तो समझिये कि कोई ऐसा भी हो सकता है कि जिसमें राग बिल्कुल न रहे । जब राग बिल्कुल नहीं रहा तो जैसे यहाँ भी देखे जा रहा है कि किसीमें ज्ञान अधिक है किसीमें और अधिक है तो राग न रहनेपर कोई ऐसा भी जीव होगा कि जिसका ज्ञान परिपूर्ण है । जिसमें गुण परिपूर्ण हो और दोष एक भी न हो सो ही प्रभु है, भगवान है ।

आत्मतत्त्वकी सन्निकटतामें विह्वलताका अप्रसंग—आत्म दृष्टिके पथपर जो जो भव्य जीव चलते हैं और जिसे यह प्रतीति रहती है कि आत्मा है, अनादिसे है, अनन्तकाल तक रहेगा, सद्भूत है और वर्तमानके प्रसङ्गोंसे यह अनुभव भी कर रहा है । जब यह रागादिक विकारोंमें पड़ता है तब तो यह व्याकुल रहता है और जब अपनी ज्ञानज्योतिकी ओर आता है तब यह निराकुल रहता है । ऐसा अध्यात्म पथ जिसने देखा है उसने सब गुत्थियां सुलझा लीं । उसे कोई अब घटना ऐसी न आयगी कि जहाँ वह कि कर्तव्यविमूढ हो जाय । कौनसी समस्या है ऐसी, बड़े फसाव वाली भी समस्या हो वहाँ भी यह अपनी ऐसी दृष्टि बना सकेगा कि वह बाह्यमें है, रहो । मैं तो यह परिपूर्ण और छेदन-भेदन रहित केवल अंतःतत्त्व हूं, यहाँ कहाँ क्लेश है, क्लेश नहीं है, पर ज्यों ही दृष्टि बाहर गयी यह मेरा अमुक है बस यहीं बरबादी शुरू हो है जाती । और, कुछ तो आशक्तिके कारण लोग चेतन-अचेतन परिग्रहोंमें चिपट गए हैं और कुछ कर्तव्यके नामपर चेतन-अचेतन परिग्रहमें चिपट जाते हैं ।

निष्काम कर्मयोगमें अन्तर्वृत्ति— निष्काम कर्मयोगमें निष्काम कर्मयोगको

http://www.jainkosh.org

कर्तव्य न समझना कि मेरा यह कर्तव्य है चेतन अचेतन परिग्रहका सम्हालना किन्तु विशिष्ट परिस्थितिमें कोई और चारा नहीं है, करना पड़ रहा है, यह दृष्टि रहती है अन्दरमें। उसीका ही कर्तव्य नाम दें तो बात सही बन जाती है पर कर्तव्यका तो सीधा अर्थ यह है कि उसके करनेके लिए करना ही चाहिए यह काम। इस अर्थका कर्तव्य नहीं है, करना पड़ रहा है, ऐसी ही परिस्थिति है, और कोई चारा नहीं है, खूब सोच लो! जब घरमें रह रहे हैं तो कुटुम्बके लोगोंसे अनुरागका व्यवहार रखे बिना गुजारो चल सकेगा क्या? न चल सकेगा। और, अनुरागका व्यवहार क्या रूखे–सूखे रहनेसे बनेगा? याने उनका न पोषण करें, न उनके भोजनपानका इन्तजाम करें, न उनकी कोई बात करें फिर अनुराग नाम किसका? तो ऐसी इन परिस्थितियों के कारण ये सारे कार्य करने पड़ रहे हैं, पर ज्ञानी जीव इसे कर्तव्य नहीं मानता, किन्तु निष्काम कर्म उसे मानता है। इसी का ही नाम कर्तव्य है।

आत्मतत्त्वके निर्मल अनुभवसे शान्तिलाभ वे अध्यात्मयोगी पुरुष धन्य हैं जिनकी दृष्टि अपने आपकी ओर लगी हो और आत्महितके लिए उत्सुक हों उससे बढ़कर पवित्र पुरुष और कौन हो सकता है? ऐसे पवित्र पुरुषोंके सङ्गमें रहकर, ऐसे वातावरणमें रहकर समय व्यतीत हो तो उससे बढ़कर और अमीरी क्या है? यहाँ कोई किसीका प्रभु नहीं है, कोई किसीका शरण नहीं है, किनको यहाँ प्रसन्न करना चाहते हैं, यहाँ किसको अपनी कलायें दिखाना। यह तो मूढ़तामें शामिल है। अपने आपको प्रसन्न कर सके तो वह है हितकी बात। खुद खुदकी निगाहमें विशुद्ध रहे, विशुद्ध आचरण करे, खुदकी समझमें खुद विशुद्ध स्वभाव रूपमें नजर आये वहाँ प्रसन्नता बन सकती है और बाहरी पदार्थोंका सम्बन्ध जोड़कर प्रसन्नता नहीं बनायी जा सकती। फिर निर्मल चित्त नहीं रह सकता, निर्दोष ज्ञान नहीं रह सकता। वहाँ इष्ट अनिष्टका भेदभाव होगा, आकुलताएँ मचेंगी। ये सब बातें जिस अन्तरमें निर्णीत हुआ करती हैं वही तो आत्मा है। केवल पृथ्वी, जल, अग्नि वायुका सम्बन्ध बने उस ही में चैतन्य शक्ति प्रकट होती है ऐसी बात नहीं है। यह चैतन्य तत्त्व इस शरीरसे जुदा है। उस विविक्त चैतन्यको यही मात्र मैं हूँ ऐसा जो अनुभव करता है वह शान्ति का रास्ता प्राप्त कर सकता है।

आत्मामें ज्ञप्ति क्रियाके कर्तृत्व व कर्मत्वकी सिद्धि – आत्म पदार्थको न मानने वाले और विज्ञानके व्यवहारको शरीरकी ही करामात बताने वाले आत्माके अस्तित्वमें यह बाधा उपस्थित कर रहे हैं कि आत्मा यदि कोई जानने वाला पदार्थ है, कर्ता है तो कर्ता होनेके कालमें कहीं कर्म न बन जायगा, अर्थात् जो जानता है वह जाननेमें नहीं आ सकता। जैसे जो पुरुष काठको काटता है तो वह खुद कटनेमें नहीं आ जाता, यह युक्ति दी जा रही है। जो पेन्सिलको छीलता है तो छीलनेका कर्ता बन रहा है, वह खुद नहीं छिल जाता अर्थात् खुद कर्म नहीं बन सकता। आत्माका प्रत्यक्ष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं हो सकता, अतएव आत्मा कोई चीज नहीं है। इसके उत्तरमें आचार्यदेव कह रहे हैं कि भाई कर्ता और कर्मके लक्षण जुदे जुदे हैं और जानने जैसे कामके लिए खुद कर्ता बने और खुद कर्म बन जाय इसमें विरोध नहीं आता। कर्ताका लक्षण है स्वतंत्रता। जो अपने कार्यमें स्वतंत्र हो दूसरेकी अपेक्षा न रखे उसे कर्ता कहते हैं और जो क्रियासे व्याप्य हो उसे कर्म कहते हैं। तो जानने वाला आत्मा है और जाननेकी क्रिया का व्याप्य भी आत्मा है। वस्तुतः तो प्रत्येक प्रसंगमें क्रियासे व्याप्य भी कर्ता ही हुआ करता है। यों आत्मा खुद कर्ता और खुद ही कर्म रहता है। कोई यदि पेन्सिल छील रहा है तो वह पुरुष पेन्सिलको नहीं छील रहा, वह तो अपने शरीरमें अपना श्रम कर रहा है। उसका कर्म पेन्सिल छीलना नहीं है किन्तु अपने शरीरकी चेष्टा बनाना है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो सर्वत्र कर्ता व कर्म एक है वही।

आत्माकी विशुद्ध प्रत्यक्षगम्यता - ज्ञानके कामकी बात तो इससे भी गहरी है। जैसे दीपक ऐसा स्वरूप रखता है कि दूसरे पदार्थको भी प्रकाशित कर देता है और खुदको भी प्रकाशित करता है। उसमें कोई बाधा नजर आती है क्या ? ऐसी ही ज्ञानस्वरूप आत्माकी बात है। आत्मा प्रत्यक्ष है, कोई किसी रूपसे अपनेको जानता, मैं सुखी हूँ मैं दुःखी हूँ मैं इच्छावान हूँ आदिक रूपसे जिसने अहं अहंकी बात उठायी वही तो मैं आत्मा हूं वह आत्मा आधार है, उससे ही ज्ञान उत्पन्न होता रहता है। ज्ञान शरीरकी करामात नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इकट्ठे हो जायें और उससे ज्ञानकी उत्पत्ति हो सो बात नहीं है। ज्ञान शरीरसे विलक्षण धर्म है।

अनुमानसे भी आत्माकी सिद्धि – अनुमानसे भी आत्माकी सिद्धि होती है, देखिये कर्ण आँख आदिक किसी कर्ताके द्वारा प्रयुक्त होते हैं क्योंकि करण होनेसे। करणका अर्थ है जिसके द्वारा काम किया जाय। जैसे देवदत्त कुल्हाड़ीसे काठको काटता है यह वाक्य बोला गया तो इसमें कर्ता है देवदत्त और क्रिया है काटना और काठ है कर्म और कुल्हाड़ीसे काटता है वह है करण। तो जो करण होता है वह स्वयं काम नहीं कर लेता। जैसे मैं चाकूसे पेन्सिल बनाता हूँ तो इसमें करण हुआ चाकू जिसके द्वारा क्रियाकी जाय उसे करण कहते हैं। चाकू स्वयं ही पेन्सिलको न बनायेगा, वह किसी कर्ताकी अपेक्षा रखेगी तब कार्य कर सकेगा। इसी प्रकार ये इन्द्रियां हैं – ये करणकी तरह हैं। साधन हैं। जैसे चाकूसे पेन्सिल छीली जाती है ऐसे ही इन्द्रियसे पदार्थ जाने जाते हैं। तो इन्द्रियां हुई करण और कर्ता द्वारा प्रयोज्य होता है। स्वयं नहीं करने लगता। तो जो भी कर्ता होगा इन इन्द्रियोंका प्रयोग करने वाला उस ही का नाम आत्मा है। यहाँ अनुमानसे आत्मतत्त्वकी सिद्धि की जा रही है। ये इन्द्रियाँ जिनके द्वारा हम जाना करते हैं ये आत्माके द्वारा प्रयुक्त हो करके ही जानने वाली बनती है क्योंकि ये करण है।

इन्द्रियोंके करणत्वकी सिद्धिसे ज्ञानके कर्ता आत्माकी सिद्धि—इन्द्रियां

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हम आपके ज्ञानके करण हैं, जाननेके साधन हैं यह बात असिद्ध नहीं है। उसकी सिद्धि करने वाला भी अनुमान सुनो। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द इनका जो परिज्ञान होता है, इनकी उपलब्धि करण द्वारा की जाती है, क्योंकि उपलब्धि क्या है? जैसे पेन्सिलके छीलनेमें छीलना चूंकि क्रिया है अतएव किसी न किसी साधनके द्वारा बनेगा ऐसे ही यह चूंकि इन पदार्थोंका ज्ञान है, उपलब्धि है वह किसी करण द्वारा बनेगा और वह करण है इन्द्रियां आत्मा इन इन्द्रियोंका साधन लेकर पदार्थोंको जानता रहता है। वह आत्मा ज्ञानस्वरूप है और इन समस्त दृश्यमान पदार्थोंसे विलक्षण है, न्यारा है, आत्माका अनुभव करे।

आत्माके आधारपर आत्माका प्रतिषेध करने वाला दर्शन - देखिये ! यह भी एक दर्शन है चारुवाकका कि आत्मा नहीं मानते, परमात्मा नहीं मानते, यह भी कोई दर्शन है क्या? कहते हैं दर्शनका रूप, क्योंकि दर्शन तो है असत्तमें वह जो आत्माका, परमात्माका, वस्तुका स्वरूप सिद्ध करे। और उनके विरुद्धमें खड़ा हो तो यह भी दर्शन कहलाने लगे। जैसे एक बात लोकसम्मत है कि मन्दिर तीर्थ आदिक धर्मस्थान माने बिना धर्मकी परम्परा नहीं चल सकती। जो धर्म जीवित हैं—जैनधर्म हिन्दूधर्म आदिक वे आज तीर्थस्थानकी वजहसे जीवित हैं। तो धर्मकी परम्परा, तीर्थ की प्रवृत्ति मन्दिर और तीर्थस्थानके कारण चल रही है। लेकिन कुछ मजहब ऐसे हैं जो मन्दिर, मूर्ति, तीर्थस्थान आदिकका निषेध करते हैं। वे धर्म (मजहब) कैसे चल रहे हैं सो बतावो? वे मन्दिर, तीर्थस्थान, मूर्ति आदिकका विरोध करके चल रहे हैं, आश्रय उन्हें भी लेना पड़ा। मन्दिर और तीर्थधाम न होते तो न मन्दिर माननेवालों का धर्म प्रगट रहेगा और न मन्दिरका निषेध करने वालोंका धर्म रहेगा। तो यों ही चारुवाक लोग भी दार्शनिक कहलाने लगे। जो आत्मा, परमात्मा, भगवान, परलोक आदिक न मानें वे भी दर्शन हो गए, क्योंकि दार्शनिकोंका विरोध कर रहे हैं।

नास्तिक्यके आशयकी अविचारित रम्यता—यद्यपि मोटे रूपसे नास्तिक लोगोंकी सूझ अच्छी लग रही है कि आत्माका भ्रम क्यों करते हो? कौन देख आया कि आगे आत्मा रहेगा या न रहेगा! उसका भ्रम बनाकर वर्तमानका जीवन भी धर्म करनेके भ्रमसे दुःखी बना रहे हो। खूब मौज उड़ावो! देखो सारी बातें कितनी भली सी लगती हैं और इसी तरहके संस्कार जीवोंमें चले आ रहे हैं। लेकिन विवेक की बात नहीं है, कुछ अपनी बुद्धि सूक्ष्मतासे प्रयुक्त तो करना चाहिए क्या है मामला? जिसमें सुख–दुःख वेदनाके अनुभव हो रहे हैं वह आधार है क्या? कोई यदि इन सुख–दुःखोंके आधारको जाननेके लिए वास्तवमें उत्सुक हो जाय तो उसे आधार प्रतीत हो जायगा। केवल लगनभर चाहिए। अभी तक लगन नहीं हुई है कि हम अपने आपको जान तो लें। और उसका उपयोग बनाकर आनन्द लें। उत्सुकता जगने का अर्थ यह है कि उसके अलावा और बाते सुहायें नहीं। जिसकी उत्सुकता है वही

http://sahjanandvarnishastra.org/

नजरमें रहे। हम अपने आत्माको जाननेमें उत्सुक नहीं हुए, इसीसे बाह्य पदार्थोंके लिए भटकते फिरते हैं।

वस्तुस्वरूपके अनुरूप विचारसे ही संकटका प्रक्षय— जब ऐसा विचार बने कि मेरे आत्माका इस जगतमें कुछ शरण नहीं है किसका मैं शरण गहूँ कि मेरा समस्त जीवन निराकुल रह जाय ! मेरे माता–पिता कोई मेरी शरण नहीं है। यह तो भ्रम बना रखा है कि मैं अमुकको पालता पोषता हूँ, सुखी करता हूँ। अरे, उसका ही उदय अनुकूल है तो दूसरोंको उसकी तरफ ध्यान रखना पड़ता है। यहाँ किसीका किसीपर अधिकार नहीं है। चूँकि यहाँ जीवोंका सङ्ग जुड़ा है और सभी जीव अपनी अपनी शान्ति चाहते हैं तो एक दूसरेके निमित्त बन जाते हैं, पर अधिकार किसीका किसी व्यक्तिपर नहीं है। कैसे हो अधिकार ? सभी जीव स्वतंत्र स्वतंत्र हैं, परिणमन स्वतन्त्र है। हमारा उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्म किसी अन्य पदार्थमें तो नहीं पहुँच सकता त्रिकाल भी। कोई कितना ही पुण्यवान् हो, किसीमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि अपना उत्पाद व्यय ध्रौव्य परिणमन कुछ भी दूसरेमें चला सके। फिर अधिकार क्या? इसी प्रकार मुझपर भी किसी दूसरेका अधिकार नहीं है। हम भली प्रकार रहते हैं तो हम दुःखसे दूर रह सकते हैं, हम ही भली प्रकार न रहें, विपरीत चलें तो हम अपनी करतूतसे दुःखी हो जायेंगे। किसी भी जीवपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं है। मेरा इस लोकमें कोई शरण नहीं है यह निर्णय तो हृदयमें बैठना चाहिए। इतना भी निर्णय न हो तब तो धर्मका कोई पग ही नहीं उठ सकता। जब हम अपना उपयोग पराधीनताका बनाए हुए हैं और स्वाधीनताकी दृष्टिका धर्म हम प्राप्त करना चाहते हैं तो ये दोनों बातें कैसे सम्भव हैं ?

स्वपरिचयके उत्सुकको स्वपरिचयका लाभ—जिसको वास्तवमें अपने आपके परिज्ञान करनेकी उत्सुकता जगी हो उसे अपने आपका परिज्ञान अवश्य होगा। जब हम दाहिनी तरफ मुख मोड़कर घड़ी देख सकते हैं, इच्छा हुई लो समय जान लिया, उसमें कोई विलम्ब लगा क्या ? तो हम अपने अन्तर मुड़ करके अपने आपका परिचय न पायें यह कैसे होगा ? पर मुड़े तो सही ? तीव्र उत्सुकता जगे, संसारकी असारताको चित्तमें खूब भरलें यहाँ कहीं सारका बात नहीं, थोड़े समयके लिए इस मायामयी दुनियामें मायामयी पुरुषोंमें अपनी इज्जत अपना नाम अपना बड़प्पन जो स्वयं मायामय हैं, झूठे हैं, झूठमें झूठने झूठकी शान रखली तो उससे क्या पूरा पड़नेका आगामी कालमें भी तो लाभ नहीं है, मूढ़ता है, मूर्खता है, जो परकी ओर का आकर्षण होता है. जो पर असार हैं, मायारूप हैं हमारे मालिक नहीं है उन परकी ओर आकर्षण बना है इसे मूढ़ता ही तो कहा जायगा यदि संसारकी असारता चित्तमें बसी हो तो शान्तिकी पात्रता आ सकती है और जब असार ही सार रूपसे मनमें बना है तो शान्तिकी ओर पग नहीं हो सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समागमके वियोगके प्रकारोंका आयोजनपर एक दृष्टान्त— देखिये भैया ! ये सारे पदार्थ छूटेंगे, पर उन्हें छोड़े किस तरह, उन छोड़नेकी विधियोंका ही सारा अंतर आ जाता है। एक छोटी सी कहानी सी है कि कोई भंगिन मलभरा टोकरा लिये जा रही थी, किसी व्यक्तिने उस टोकरेपर कोई साफ तौलिया ढाकनेके लिये दे दिया इसलिये कि किसीको कष्ट न हो। टोकरेको देखकर तीन व्यक्ति उस महिलाके पीछे लग गये। सोचा कि इस टोकरेमें कोई अच्छी चीज होगी। भंगिन बोली— भाई क्यों हमारे पीछे लगे हो। इस टोकरेमें तो मल भरा है। इतनी बात सुनकर उनमेंसे एक लौट गया। दो व्यक्ति अभी पीछे लगे रहे। भंगिनने कहा—भाई क्यों पीछे लगे हो ? इस टोकरेमें तो मल भरा है। तो उन्होंने कहा कि हम ऐसे नहीं मानेंगे हमें तो दिखा दो। भंगिनने तौलिया उघाड़कर दिखा दिया तो उन दो मेंसे एक वापिस हो गया। एक व्यक्ति अभी भी पीछे लगा रहा। भंगिनने फिर कहा कि भाई इस टोकनेमें मल भरा है, तुम क्यों पीछे लगे हो ? तो उस व्यक्तिने कहा कि हम तो ऐसे नहीं मानेंगे। हमें तो अच्छी तरह दिखा दो, जब सूँघ-साँघकर भली प्रकार जान जायेंगे तब लौटेंगे। भंगिनने तौलिया उघाड़ दिया। जब खूब सूँघ साँघ-कर परख करली तब वह लौटे।

समागमके वियोगोंके प्रकारोंके आयोजक—ऐसे ही तीन तरहके जीव यहां भी हैं। कुछ तो संसारकी असारता समझकर शीघ्र ही संसारसे मुख मोड़ लेते हैं, कुछ लोग ऐसे होते हैं कि संसारके भोघ विषयोंमें कुज पड़ते हैं उसमें परिणति करते हैं और उन विषयोंका कुछ मौज देखकर संसारसे मुख मोड़ लेते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जिनके चित्तमें विषयोंकी असारता जम नहीं पाती। वे सांसारिक विषय साधनोंमें खूब लिप्त रहा करते हैं, जरा-जरा सी बातोंमें उनका चित्त विचलित हो जाता है। कभी कोई विपत्ति आ जाय, १०—५ हजारका नुकसान हो जाय तो वे यों अनुभव करते कि जैसे हम खुद लुट गए हों। यह हिम्मत नहीं रहती कि मैं तो परिपूर्ण ज्ञानमात्र वहीका वही हूँ। मुझमें न कुछ आया, न कुछ गया। मैं अपने आप में स्वयं परिपूर्ण हूँ, ऐसा बोध नहीं कर पाता और अधीर हो जाता है, जघड़ा जाता है, अनहोनी मानता है। दूसरोंपर कोई विपत्ति घटे तो उसे समझाता है कि भाई ! होनी अमिट है, ऐसा होना ही था सो हुआ, पर अपने बारेमें ऐसा नहीं सोच पाता। यह तो अनहोनी हो गई। तो जब तक इन बाह्य पदार्थोंकी असारता विदित न हो तब तक आत्मामें परिचयकी उत्सुकता नहीं हो सकती। यह हाल तो इन चारुवाक लोगोंका है। इनकी विषयोंसे वृत्ति नहीं हटी, अतएव इनका सिद्धान्त बन गया आत्मा कोइ चीज नहीं है, यह शरीर ही है इसमें ज्ञानकी बिजली उत्पन्न हुई है, जब यह शरीर शान्त हो जायगा, पृथ्वीके अणु पृथ्वीमें मिल जायेंगे, जलके अणु जलमें, अग्नि के अणु अग्निमें और वायुके अणु वायुमें मिल जायेंगे तब ज्ञानशक्ति भी न रहेगी। यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब इस ही आशयका तो परिणाम है कि विषयोंकी असारता अहितता उनकी समझ में नहीं आयी।

विषयाभिलाष और मायाचारमें धर्मकी विरूपता– कुछ लोग ऐसे भी हुए दार्शनिक कि लोकमें तो धर्मात्मा बनना चाहिए पर मांस खाना आदिक जैसे कुकर्मोंकी वाञ्छा रही तो वहाँ धर्मके नामपर यज्ञ रच दिया। बड़ा हवनकुण्ड खोदा, बड़ी सामग्री जोड़ी, बुलावा दिया, बड़ा पूजन-विधानका नाटक बनाया, उसमें घी भी डाला और भी बहुतसे सुगन्धित पदार्थ डाले और उसीमें किसी पशुको होम दिया ताकि पक जाय। उसका फिर प्रसादरूप समझकर मांस खाते हैं। तो लोकमें धर्मात्मा कहलाये और अपने विषयोंका पोषण भी किया। ये सभी बातें इस ही आधारपर हैं कि वास्तविक मायनेमें आपके जाननेकी और धर्म करनेकी उत्सुकता नहीं बनी। उत्सुकता तो विषय भोगनेकी ही रही। फिर आत्माका परिचय कैसे बने ?

आत्मपरिचयसे नरभवलाभकी सार्थकता– यदि विषयोंकी असारता ज्ञात हो और हितरूप क्या है ? ऐसी अपने आपमें जाननेकी उत्सुकता हो तो आनन्द धाम निजपरमात्मतत्त्वका परिचय अवश्य होगा। भैया ! जीवन असार है क्षणिक है इसमें करनेका काम है कि हम अपने आपको पहिचान लें और अपने आपमें मग्न हो सकनेका कोई प्रसन्न करलें। यह काम यदि कर लिया तो मनुष्य होना सार्थक है और यह बात यदि न बनी तो सब जीवोंकी ही भांति समय ही गवां दिया ऐसे ही समझना चाहिए।

आत्म सिद्धिका प्रकरण—अपने आपका पता लग जाना कि मैं क्या हूँ इस ही पतेके होनेके बाद फिर धर्मकर्तव्य निभाया जा सकता है अतएव धर्म-पालनके लिये सर्वप्रथम मूलभूत अपने आत्माका परिचय चाहिए। मैं आत्मा क्या हूँ और मुझे क्या करना है ये सब बातें तब ही तो बनेंगी जब अपने स्वरूपका स्पष्ट भान हो जाय। इस के विरोधमें मनुष्यको छोड़कर बिरले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंको छोड़कर सारा संसार इसके विरोधमें है और कुछ दार्शनिक लोग भी जो दर्शनका रूप देकर इस बातको भी कहने लगे हैं कि आत्मा नामक वस्तु कुछ भी नहीं है। शरीरका निषेध तो किया नहीं जा सकता क्योंकि वह तो आंखोंके सामने है। तब इस शरीरका ही धर्म ज्ञान ज्ञान वाला पदार्थ कोई शरीरसे अलग नहीं है ऐसा सिद्धान्त बनाया जो सुननेमें सभी को रुचिकर लगता है क्योंकि इसमें विषय सुखके परिहारकी कल्पना नहीं करनी पड़ती इस प्रसंगमें आत्माकी ही सिद्धि की जा रही है कि ज्ञानका आधारभूत अमूर्त कोई आत्मतत्त्व है। देखिये भैया शब्द आदिकका जो ज्ञान होता है अमुक भाईने यों कहा— इस प्रकारका जो ज्ञान होता है वह ज्ञान गुण है कि नहीं ? गुण है। तो जितने भी गुण होते हैं वे किसी पदार्थके आश्रयमें ही हुआ करते हैं, निराश्रयमें गुण नहीं होता। जितने भी गुण होते हैं वे द्रव्यके आश्रयसे होते हैं। अनेक ज्ञान होते रहते हैं, ये सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ज्ञान जिसके आश्रयमें है वही एक पदार्थ आत्मा कहलाता है। जैसे ये नीले पीले हरे आदिक रूप गुण हैं कि नहीं ? गुण हैं। तो इसके आश्रयभूत है ना ये भौतिक पदार्थ कितने भी गुण हों उसके आश्रयभूत पदार्थ होते हैं। ज्ञान गुण है, उनका आश्रयभूत पदार्थ आत्मा है।

ज्ञानको शरीर, इन्द्रिय, विषय और मनका गुण माननेका पक्ष—आत्मसंसिद्धिके विरोधी चारुवाक अपना मन्तव्य रख रहे हैं कि ज्ञान गुण तो जरूर है पर वह आत्माका गुण नहीं हैं, शरीरका गुण है, इन्द्रियका गुण है, मनका गुण है और विषयका गुण है। शरीर, इन्द्रिय, मन और विषय इनको छोड़कर अन्य कोई आश्रय ज्ञानका नहीं है जिससे कि तुम आत्माकी सिद्धि कर सको। इस प्रश्नपर विचार किया जा रहा है और विवरण पूर्वक निराकरण किया जायगा कि ज्ञान शरीर आदिका गुण नहीं है क्योंकि शरीर तो भूतका विकार है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुका विकार है। देखिये ! जो बात कही जा रही है तो इनके मन्तव्यका खण्डन किया जा रहा है वे जो जो कुछ मानते हों उनकी ही बात कहकर खण्डन किया जाता हैं, हम अपनी सीधी बात रखकर खण्डन करें तो वे मानेंगे थोड़े ही। शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुका विकार बताते हैं, लेकिन जैन शासनमें जो ६ काय कहे गये हैं आप उसमें यह मर्म पायेंगे कि क्यों ये ६ भेद किये गए ? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय ये ६ कार्य परस्परमें भिन्न है। चारुवाक लोग त्रसकायको भी पृथ्वी, जल, अग्नि वायुका संयोग मानते हैं लेकिन इन छहों कायोंमें परस्पर भेद है। पृथ्वी स्वयं पृथ्वी मात्र है। इसी तरह जल अग्नि वगैरह अपने अपने स्वरूपमें है। यह शरीर त्रसकाय यद्यपि पिंडोलासा है पर पिण्ड हो जानेके कारण वह पृथ्वी कहलाये यह बात युक्तिमें नहीं बैठती, क्योंकि पृथ्वीके धर्मसे त्रसकायका धर्म जुदा है। पर यहाँ चूँकि चारुवाकका ही निराकरण करते जा रहे हैं यों उसीके मंतव्यसे सब कुछ कह रहे हैं।

ज्ञानको शरीरका गुण माननेका प्रतिषेध शरीर पृथ्वी आदिक अचेतन चार तत्त्वोंका विकार है अतएव उसका गुण चैतन्य नहीं हो सकता। जैसे ये घट पट वगैरह पृथ्वी आदिके विकार हैं तो इनमें चैतन्य गुण नहीं है और फिर स्पष्ट है। जो जिसका गुण होता है वह उसके हटनेपर हट जाता है। जैसे अग्निका गुण गर्मी है तो अग्निके मिटनेपर गर्मी भी मिट जाती है लेकिन शरीर तो रहता है और चैतन्य हट जाता है। जैसी कि मरने वालेकी स्थिति होती है। यदि चैतन्य गुण शरीरका होता तो चैतन्यके साथ शरीर चला जाता या शरीरके साथ चैतन्य बना ही रहता, पर शरीर यहीं रह जाता है और चैतन्य अलग हो जाता है। तो चैतन्य चूँकि शरीरसे हट जाता है अतः शरीरका गुण नहीं है। जो शरीरके विशेष गुण नहीं है वे उसके होनेपर दूर हो जाते हैं और जो शरीरके गुण हैं वे बराबर रहते हैं। तो चैतन्य चूँकि

शरीरसे हट जाता अतः शरीरका गुण नहीं है।

शरीरके भान बिना अहं प्रत्ययके बोधसे आत्माकी अनुभूति--आत्मा बातको मुख्यतया इस पद्धतिसे देखना चाहिए कि जिसमें अहं अहंका बोध होता है बस वही आत्मा है और उसके आधारसे ही ज्ञान चलता है। जब खूब गहन अंधकार होता है अपने शरीरका कोई भी अंग नहीं दिखता उस समयमें अहं अहंके रूपसे अपने आप का ज्ञान तो होता रहता है पर शरीर कहाँ है, कहां पड़ा है यह उसे स्पष्ट नहीं हो पाता। हालाकि उसमें फंसा है, जानता है पर जैसा अब इस समय प्रकाशमें बोध हो रहा है वैसा नहीं होता। तो अहं प्रत्ययके द्वारा अर्थात् मैं सुखी हूँ दुःखी हूँ इच्छावान हूँ आदिक रूपमें जो इसका बोध चलता है वह ज्ञान आत्माके आधारमें ही तो है। और, यह मैं आत्मा सदा रहने वाला हूं इतनी बात चित्तमें आये तो इसे यह इच्छा होगी कि मैं इस तरहसे रहूँ। अपने अन्दरमें इस प्रकारकी परिणति बनाऊँ कि इस कालमें भी शान्त रहूँ और भविष्यमें भी सदाके लिये संकट छूट जायें। आत्माका जिस प्रकार भान बन सके उस तरह परिचय कर लेना यह बहुत बड़ा कार्य है। अपने आपको सदाके लिये संकटोंसे दूर कर लेनेका पुरुषार्थ है।

शान्तिके अर्थ आत्मोन्मुखताकी आवश्यकता—भैया! हम आप सभी जन जितनी भी चेष्टा करते हैं, शरीरका परिश्रम करते हैं, धनसंचय, धनखर्च जितने भी काम करते हैं, वे सब शान्तिके लिये करते हैं, किन्तु शान्ति प्राप्त न हो सकी। इसका कारण यह है कि जो शान्त रहना चाहता है उसका स्वयं शान्त स्वभाव है। उसे बाहरमें कोई श्रम आकर्षण करनेकी जरूरत नहीं है। इस मर्मका पता नहीं है तो अपने आपके आधारको तजकर बाहरमें मुख करके यह ज्ञान दौड़ रहा है। इस कारण उसे शान्ति नहीं प्राप्त होती। आत्माका भान हो और अपने निकट बने रहनेका अभ्यास बने तो फिर धन हो अथवा न हो, कैसी भी स्थिति हो पर उसे अप्रसन्नता नहीं हो सकती। और, जिसे अपने आपके प्रभुका परिचय न हो उसके पास कितना ही धन हो, कितनी ही इज्जत हो, पर उसे शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। कहीं कुछ हो उसकी उपेक्षा करके किसी न किसी प्रकार भान तो कर लें कि यह मैं हूँ। इस ज्ञानमें सारे चमत्कार भरे पड़े हुए हैं, केवल भीतरमें ज्ञानकी दिशाभर बदलनेका काम पड़ा हुआ है। यदि आत्म-उन्मुखता हो सके इतना उपयोग और ऐसा ही अभ्यास बन सके तो जब चाहे ऐसा अनुभव कर सकते कि यह मैं देहसे भी न्यारा ज्ञानमात्र हूँ।

प्रभुके आनन्दमय होनेकी विशेषताका महत्त्व—जानन वृत्तिमें ज्ञानके विशुद्ध कामके होनेपर आकुलताका कोई काम रहता ही नहीं, क्योंकि ज्ञानस्वरूप ज्ञानीके जाननेपर इष्ट अनिष्टकी बुद्धि नहीं हुआ करती। साम्यभाव जगता है, यही शान्तिका मार्ग है, यही कार्य जिसने किया और इस परम पुरुषार्थके प्रसादसे जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वीतराग हुए, और वीतराग होनेके ही कारण सर्वज्ञ हुए उस परमात्माकी वंदना हम आप तो इसी कारण कर रहे हैं कि वे पूर्ण निर्दोष हैं और पूर्ण गुणमय हैं निर्दोष होने और गुणमय होनेका फल उन्हें प्राप्त होता है जो पूर्ण आनन्दमय हैं। प्रभुमें वीतरागताकी विशेषता है, सर्वज्ञताकी विशेषता है, आनन्दमय होनेकी विशेषता है, उन सबमें आनन्दमय होनेका भक्तके चित्तमें अत्यन्त अधिक महत्त्व है। कल्पना करो कि कभी कोई वीतराग भी बन जाय, सर्वज्ञ भी बन जाय और आनन्दमय न हो। यद्यपि ऐसा नहीं होता है लेकिन एक आनन्दमयताका महत्त्व जाननेके लिए सोचो तो फिर ऐसा गुणमय और निर्दोष होनेकी भी उपादेयता भक्तमें न रहेगी।

वीतराग, सर्वज्ञ, आनन्दधाम प्रभुकी उपासनाका तात्लिकाक फल— अनन्त आनन्दमय हैं और वे हैं वीतराग। तो ऐसे परमात्मतत्त्वका हम जो बारबार ध्यानका सीधा प्रभाव हमारे आत्मामें अपने आपको इस गुणरूप अनुभवन करनेका पड़ता है और यही कारण है कि हम प्रभुकी उपासनाका तुरन्त फल लूट लेते हैं। कोई प्रभु कर्ता हो सुख दुःख देने वाला हो तो उसकी उपासना करनेका फल देरमें प्राप्त होगा। जब वह प्रसन्न हो जायगा और उसके चित्तमें यह बात आयगी कि इसका दुःख दूर करें फिर कोई उपाय बनायेगा तव दुःख दूर कर सकेगा ऐसी विह्वलता तो प्रभुके होती नहीं यह तो वीतराग सर्वज्ञ व अकर्ता है पर कल्पना लगाकर बता रहे हैं वह भी काल्पनिक बात है लेकिन जिसको यथार्थ ज्ञान है, प्रभुस्वरूपको यथार्थ विधि से ध्यान रहा है उसको उस पूजाका फल, उस उपासनाका ध्यानका फल तुरन्त मिलता रहता है। अब जिनकी जितनी उपासना है जिनकी जितनी पहुंच है उसके अनुसार प्रभाव होता है अतएव प्रभावमें फर्क है लेकिन जितना जो अन्त तत्त्वके निकट पहुँच सकता है उपयोग द्वारा उसे उसका प्रभाव तुरन्त प्राप्त होता है।

आत्म परिचय बिना शान्तिके प्रयासोंकी विफलता— एक आत्मतत्त्वको समझे बिना यह बताया गया है कि अनेक बार यहां मुनि बन बनकर घोर तपश्चरण भी इसने कर लिया पर यह संसारसे तिर न सका और आत्मपरिचय होनेके बादके अनेक दृष्टान्त ऐसे मिलेंगे कि दीक्षा लेनेपर थोड़े ही काल बाद किसीको तो अन्तर्मुहूर्तमें ही किसीको वर्षोंमें निर्वाणकी प्राप्ति हुई है। अपना जीवन शान्त निराकुल रखनेके लिये प्रत्येक मनस्वीका कार्य है कि वह अपने आत्माका परिचय करलें कि मैं क्या हूँ आत्मपरिचय होनेपर विषय कषाय तो यह प्राणी आनन्दके लिये चाहता है पर इसे जब आत्मानुभव होता है तो उस अद्भुत आनन्दकीप्राप्ति होती है कि ये झूठे पराधीन विषयोंके सुख फिर नहीं सुहाते।

तत्त्वज्ञानसे क्रोध मानका प्रक्षय— जिसे इस ज्ञापकस्वरूप पावन अंतस्तत्त्व का अनुभव हुआ है उसके क्रोध शान्त हो जाता है। किसपर क्रोध करना किसीसे मेरे में बिगाड़ क्या आता है, आ ही नहीं सकता है। सभी जीव अपने आपमें अपनी चेष्टा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किया करते हैं। उनसे मेरा क्या बिगाड़ है ? किसपर क्रोध करें, उसका क्रोध स्वयं शिथिल हो जाता है। इस अमूर्त ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वका बोध होनेपर मान कहाँ जगेगा। क्या मान करना ? यह तो बड़ा कोमल अमूर्त ज्ञान स्वरूप आनन्दमय मैं आत्मा हूँ। इसका सुख दुःख जीवन मरण सब कुछ इसके परिणामोंपर निर्भर हैं। दूसरोंका क्या जताना कि हम कुछ धनिक, ज्ञानी, इज्जतवान हैं। यहाँ कोई किसीका अधिकारी न था, न है, न हो सकेगा। किसको बताना है ? और बताया जानेपर भी हम अपना स्वरूप अपनी महिमा अपना स्वभाव बता ही नहीं सकते और दूसरे कोई जान भी नहीं सकते। कदाचित् कोई ज्ञानी हो और वह जान भी जाय चैतन्तस्वरूप और उसकी महिमा तो वह अपने आपका सब कुछ बन गया। उसकी दृष्टिसे व्यक्तिगत रूपसे मेरा "मैं" नहीं आ पाया, उसे तो तो परम विशुद्ध चिद्ब्रह्म अनुभवमें आया। किसे क्या बताना कि मैं क्या हूँ। जो आत्मज्ञानी पुरुष है उसके मान कषाय नहीं ठहर पाती।

तत्त्वज्ञानसे माया, लोभका प्रक्षय—मायाचारका करना क्या है। जब विषय साधनोंमें प्रीति नहीं रही, उनमें हितका भाव नहीं रहा तो किसी भी भौतिक पदार्थका जिस किसी भी प्रकार संचय करलें यह बात मनमें नहीं आती, फिर मायाचारका काम क्या ? कपट तो तब किया जाता है जब कुछ सांसारिक वस्तुवोंके जोड़ने का भाव हो और उसके लिये ही अपनी कमर कसी हो। आत्मज्ञानी पुरुष मायाचार क्या करेगा ? और लोभ कषाय भी उसके क्या ? सारा वैभव उस आत्मज्ञानीकी दृष्टिमें छूटा ही हुआ है और कुछ मिल भी जाय वैभव तो उसके त्यागनेमें उसे विलम्ब नहीं लगता। यों जो आत्मपरिचयी पुरुष है वह ही यथार्थमें धर्मपालन कर सकता है, अज्ञान न होना, राग-द्वेष न होना, क्रोध, मान माया, लोभ कषायें न करना लही तो धर्मपालन है। यह सब आत्मज्ञानपर निर्भर है। आत्मा वास्तविक पदार्थ है, ज्ञान विज्ञानका आश्रयभूत है, वह शरीरका गुण नहीं है।

ज्ञानको इन्द्रियका गुण माननेका प्रतिषेध—ज्ञान इन्द्रियका भी गुण नहीं है क्योंकि इन्द्रिय को करणभूत हैं, साधन हैं। जैसे मैं चाकूसे पेन्सिल छीलता हूँ तो यहाँ चाकू करणभूत है, कर्ता नहीं है, क्रियामें स्वतन्त्र नहीं हैं, ऐसे ही इन्द्रियाँ ज्ञानके काममें करणभूत हैं, स्वतन्त्र कर्ता नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि इन्द्रिय भूतविकार है, पृथ्वी आदिक तत्त्वका विकार है अतएव इन्द्रियाँ भी चैतन्य गुण वाली नहीं हैं। चैतन्य गुण वाला तो आत्मा है। यदि चैतन्य इन्द्रियका गुण मान जाये तो इन्द्रियका विनाश होनेपर फिर चैतन्यकी प्रतीति भी न रहना चाहिए। जैसे आँख फूट जाय तो चैतन्य मिट जाना चाहिए क्योंकि चैतन्य जिसका गुण है वह मिट गया। गुणीके विनाश होनेपर फिर गुण कहाँ ठहर सकेंगे ? और भी युक्तियोंसे सुनिये ! स्मरण करना, अनेक प्रकारके ज्ञान करना ये सब इन्द्रियके गुण नहीं हैं क्योंकि इन्द्रियके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विनाश होनेपर भी ये स्मरण आदिक तो होते रहते हैं। जिनका विनाश होनेपर भी किसीकी उत्पत्ति होती रहती है तो वह उसका गुण नहीं है। जैसे कपड़ेका विनाश होनेपर भी चौकीका रूप, चौकीकी अवस्थाएँ ये उत्पन्न होती रहती हैं तो चौकीका चौकी रूपसे, कपड़ेका कपड़े रूपसे ही धर्म कहेंगे, चौकीकी बातको कपड़ेका धर्म नहीं कहेंगे। वे न्यारी–न्यारी बातें हैं। चैतन्य इन्द्रियका गुण नहीं है क्योंकि इन्द्रियके विनाश होनेपर भी स्मरण आदिक होते रहते हैं।

इन्द्रियव्यापारके परिहारमें अन्तस्तत्त्वकी झलक – कभीकभी इस शरीरका भी भान न करके इन्द्रियोंको संकोचकर आखोंको बन्दकर केवल एक विशुद्ध आत्माके ही ध्यानमें लग जाये तो वह तो अधिक ठीक ही है पर किसी ध्यान में लग जाय उस कालमें इसे कुछ ज्ञानमयी दुनिया नजर आयगी शरीरका भान न रहेगा। चाहे कल्पनाओंके पुलावे बाधें और चाहे विशुद्ध दृष्टि बनाये पर एक भौतिकता न रहेगी, प्रकाश ज्योति परिणतिमें रहती है। तो यह चैतन्य यह ज्ञान आत्माके आश्रय है, शरीरके आश्रय नहीं है और ज्ञान स्वयं अपने आपका जाननहार है और परपदार्थोंका भी प्रकाश करने वाला है, ऐसा ज्ञानरूप अपने आपकी आत्माका परिचय होना धर्मपालनके लिए प्रथम और अत्यन्त आवश्यक है।

ज्ञानको इन्द्रियका गुण माननेसे विडम्बना—शरीरसे अतिरिक्त अन्य कुछ आत्मा नहीं है ऐसे चारुवाकके सिद्धान्त के प्रति कहा जा रहा है कि आत्मा यदि कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है तो यह जो ज्ञान होता है यह कैसे उत्पन्न होता है ? इसके उत्तरमें चारुवाकने कहा था कि यह ज्ञान अथवा चैतन्य शरीरका गुण है, इन्द्रियका गुण और विषयोंका गुण है मनका गुण है इनका आधारभूत कोई अन्य पदार्थ नहीं है, इस सम्बन्धमें शरीर का गुण तो आत्मतत्त्व है नहीं, ज्ञान है नहीं, इसे सिद्ध किया गया था, ओर अब यह प्रसंग चल रहा है कि चैतन्य इन्द्रियका गुण नहीं है यदि जानकारी इन्द्रियका गुण हो जाय तो इसका अर्थ है कि जानकारीको करने वाली इन्द्रिय हैं। तब इन्द्रियां कर्ता हो गयी क्योंकि उनका धर्म है ज्ञान। तो किसी क्रियामें कारण करण जरूर होता है जब इन्द्रियोंने जाना तो उस जाननेके लिए अन्य इन्द्रियां होना चाहिए यदि अन्य इन्द्रियां मानोगे तो उसके लिए भी अन्य इन्दियां हों, इस तरह एक शरीरमें कितने ही चैतन्य बन जाँयगे। जितनी इन्द्रियां होगी वे सब एक एक चैतन्य बन उठेंगे, और ऐसा होने पर जैसे किसी देवदत्त ने कोई बात जानी तो यज्ञदत्तको अर्थात् अन्य पुरुषको यह प्रतिसंधान नहीं बनता कि उसने जो जाना वह यह है। यों ही जब आँखों से देखा औंर फिर अभी कर्ण द्वारा सुना तो कर्ण द्वारा यह जुड़ाव न बनेगा कि देखो मैं वही सुन रहा हूँ जो कुछ मैंने देखा था क्योंकि जुदा इन्द्रियाँ हैं। उनका गुण चैतन्य माना हे यों सब चैतन्य भिन्न-भिन्न तत्त्व हो गये। इससे यह बात नहीं है कि ज्ञान इन्द्रियका गुरण है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानके इन्द्रियगुणत्वका खण्डन—यदि कहो एक ही इन्द्रिय समस्त विषयोंका अधिनायक बनेगी तो इन्द्रिय कह लो, उसीका नाम आत्मा है। उसमें ज्ञान गुण है और उसकी प्रतिसमय वर्तना होती रहती है। ज्ञानका आश्रयभूत होनेसे ज्ञान की अभिव्यक्ति होती कि स्वतंत्र पदार्थ है। शरीर ज्ञानका श्रोत नहीं है. यह प्रकरण इस दर्शन शास्त्रमें इसलिये महत्त्वका है कि सर्व कुछ हित आत्माका अस्तित्त्व समझने पर अवलम्बित है, मैं आत्मा हूँ। इस समय मलिन हूँ, इसका स्वभाव मलिन नहीं है ये औपाधिक भाव मिटा कि इसमें शुद्ध स्वभावकी अभिव्यक्ति हो जायगी और यही हितरूप है, निराकुल स्वरूप है। ऐसे आत्महितमें लगता आत्मतत्त्वके ज्ञान बिना नहीं बन सकता अतः आत्माकी प्रतीति सही होना बहुत आवश्यक है। यह ज्ञान इन्द्रियका गुण नहीं है।

ज्ञानको मनका गुण माननेका प्रतिषेध—अब तीसरी बात जो कहा जा कि चैतन्य मनका गुण हैं तो जितने समाधान इन्द्रियके गुण बतानेमें कहे गये वे सब इसमें आवेंगे। मन यदि चैतन्य गुण वाला हो तो उसके लिये फिर और करणकी आवश्यकता हैं। मन स्वयं एक करण हैं। मन है अन्तःकरण और इन्द्रिय है बाह्य करण। करण मायने साधन इन्द्रिय। मनका नाम है अनिन्द्रिय। वह गुप्त इन्द्रिय है क्योंकि लोगोको प्रकट नहीं है और ये ५ इन्द्रियां है ये प्रकट इन्द्रियां है, इन्हें बाह्य करण कहते हैं। तो चूँकि मन स्वयं करण है अतएव वह चैतन्यगुण वाला नहीं बन सकता। ज्ञानका करने वाला करण नहीं हुआ करता। जैसे देवदत्त कुल्हाड़ीसे काठ को छेदता है इसमें करण है कुल्हाड़ी तो कुल्हाड़ी स्वयं छेदन क्रियामें समर्थ नहीं है। वह कर्तासे प्रयुक्त होकर ही करण बनता है इसी प्रकार मन भी चैतन्य गुण वाला नहीं है क्योंकि वह करण है। यदि मनको चैतन्य गुण वाला मान ले तो मन कर्ता बन गया और वह फिर दूसरेकी अपेक्षा रखेगा जब आत्मा ही प्रकाशान्तरसे कहा हुआ समझना। वह आत्मा ही है जिसे मन, मन बोला करते हैं।

वस्तुस्वरूपके यथार्थ बोधसे लाभ—पदार्थका स्वरूप जैसा है, वैसा ज्ञानमें आना चाहिए, नाम उसका चाहे कुछ रखें। जैसे आत्मकल्याणके लिए यह आवश्यक है कि समग्र पदार्थोंका स्वरूप यथार्थ जानकारीमें आये। अब इस प्रयोगका नाम धर्म है ना। इसका नाम कुछ भी रखलें - हिन्दू, वैष्णव, सनातन, जैन आदि कुछ भी कहें पर वस्तुका स्वरूप वैसा आना चाहिए। कितने ही सम्यग्दृष्टि जीव ऐसे हैं कि जिन्हें जैन नामका भी पता नहीं और वस्तुका स्वरूप ऐसा उनके प्रतिभासमें है कि उनके सम्यक्त्व है और धर्मसाधना भी है। तिर्यञ्चोंमें तो सभी ऐसे हैं जो संज्ञीपञ्चेन्द्रिय हैं ज्ञानी हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, उन्हें जैन नामका क्या पता, पर यथार्थस्वरूप अनुभवमें आता है, अपना यथार्थ स्वरूप जैसा सहज भाव है वह ज्ञानमें आये। वे बता नहीं सकते कि इस सम्यग्दृष्टि पशुमें किस स्वभावका प्रतिभास जगा है किन्तु वह प्रतिभास वैसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही है जैसा कि हम आपको अनुभूतिके समय हुआ करता है। वहाँ अन्तर नहीं हैं अनुभवमें, प्रतीतिमें। तो नाम कुछ भी लो, जैसा वस्तुका स्वरूप है वैसा परिचयमें रहे तो वह धर्मसाधन है, ऐसे ही नाम चाहे मन रख लो, इन्द्रिय रख लो और जैसे अन्य अन्य भाषाओंके नाम जुदे-जुदे रखे हैं ऐसे ही ये भी नाम रख लो, लेकिन यह ज्ञानमें रहना चाहिए कि ज्ञानका आधारभूत, ज्ञानमय ही सजातीय कोई तत्त्व है। ज्ञानसे विजातीय कोई पिण्ड ज्ञानका स्रोत और उत्पादक नहीं है।

ज्ञानको विषयका गुण माननेका पक्ष—और चौथी बात जो कही गयी थी चैतन्य विषयका गुण है, इन्द्रियके द्वारा जो पदार्थ भोगनेमें आते हैं उन पदार्थोंका नाम है विषय। ज्ञान उन विषयोंका गुण है। कोई यह सोच सकता है कि ऐसे भी कोई दर्शन हैं जो एकदम भोगनेमें आने वाले विषयोंका भी गुण ज्ञानको मान लें ऐसे दर्शन तदुत्पत्ति अर्थात् इन विषयोंसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ऐसा मानने वाले दर्शनका तो इससे पहिले ही जिकर हो गया था। ज्ञान विषयसे उत्पन्न होता है जिन पदार्थोंको जानता है ज्ञान उन पदार्थोंसे ज्ञान उत्पन्न हुआ ऐसा मानने वाले भी दर्शन हैं। तो यों ये भौतिकवादी भी अपना प्रस्ताव रख रहे हैं कि ज्ञान अथवा चैतन्य विषयका गुण है स्थूल दृष्टिसे लोग ऐसा प्रयोग भी करते हैं। जैसे किसी बातपर चर्चा चल उठी कोई कानून पर कि अमुक कानून ऐसा है उसकी धारा क्या है? तो झट शानसे पुस्तक उठाते हैं और बड़ी शानसे पुस्तकको खोलकर देखते हैं और कहते हैं कि देखो ना इस पुस्तकसे यह ज्ञान निकला। तो ऐसी दृष्टियां भी तो हैं। ज्ञान विषयका गुण है ऐसा एक प्रश्न रख देनेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

ज्ञानको विषयका गुण माननेका प्रतिषेध - अब आचार्य यहाँ समाधान देते हैं कि ज्ञान विषयका गुण नहीं हो सकता। यहाँ विषय दो प्रकारोंका है। एक इन्द्रिय द्वारा वे विषय कहलाते और एक ज्ञान जिसको जानता है वे भी विषय कहलाते दोनों प्रकारके विषयोंसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। और न उन विषयोंका गुण है ज्ञान, क्योंकि विषयोंके न होनेपर अथवा विषयोंका विनाश होनेपर भी स्मरण आदिक देखे जाते हैं। ज्ञानका अब ऐसा अविनाभाव तो नहीं रहा कि विषय सामने हो तब ज्ञान हो, विषय भोगे जायें तब ज्ञान रहे। विषय नहीं है अथवा वे पहिले नष्ट हो गए तो भी स्मरण आदिक देखे जाते हैं स्मरण तो ज्ञानका ही नाम है। अब विषयोंका गुण यदि ज्ञानको मानें तो गुणी तो रहे नहीं और गुण बने रहे ऐसा कभी हो सकता है क्या? किन्तु विषय तो रहे नहीं और ज्ञान बना रहे यह हो तो रहा है। इससे सिद्ध है कि ज्ञान विषयका गुण नहीं है। भौतिक पदार्थका धर्म नहीं है ज्ञान।

ज्ञानके आधारकी अहंप्रत्ययवेद्यता—इस तरह इन युक्तियोंसे यह निर्णय मानो कि ज्ञान शरीरका धर्म नहीं है, ज्ञान आत्माका धर्म है। आत्मा एक चैतन्यस्वरूप पदार्थ है और वह सद्भूत है, स्वतन्त्र है, उसमें उसका परिणमन चलता है, सभी जन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने आपमें मैं हूँ, मैं दुःखी हूँ इस रूपसे अहंका बोध कर रहे हैं। जिसमें अहं अहं प्रत्यय बनता है मैं हूँ, मैं हूँ जिसमें कहा जा रहा है वह सद्भूत कोई वस्तु है कि नहीं, है। उसीका नाम आत्मा है। जो आत्माको यथार्थ मान सके उस हीका नाम आस्तिक है और जो आत्माका यथार्थ स्वरूप नहीं मान सकता उसका नाम नास्तिक है।

आस्तिक और नास्तिकका अर्थ – धर्मके नामपर आस्तिक नास्तिकका अर्थ नहीं है जैसे कि जो हमारे धर्मको माने सो आस्तिक जो हमारे धर्मको न माने सो नास्तिक। ऐसी बात नहीं है किन्तु पदार्थ जैसा है वैसा मान ले सो आस्तिक और उसके विपरीत माने सो नास्तिक। अब प्रश्न यह आता कि हर एक लोग कहते हैं कि हम जो कहते हैं वही वस्तु स्वरूप है। तब उसका युक्तियोंसे विश्लेषण होता है और वह विश्लेषण करना एक दर्शन शास्त्र है। द्रव्यानुयोगके दो विभाग हैं–एक दार्शनिक विभाग और एक आध्यात्मिक विभाग। इन दोनोंका परस्परमें अविनाभाव बनाना चाहिये एक विशुद्ध जानकारी करनेके लिये कि तत्त्वका स्वरूप क्या है। दर्शन शास्त्र के बिना हम किसी वस्तुका यथार्थ अवगम न कर पायेंगे इस कारण इसमें भी हमारा प्रवेश रहना चाहिये।

ज्ञानकी भूतसे अभिव्यक्ति माननेपर भी ज्ञानकी विविक्तता यहाँ युक्तियों द्वारा आत्माका अस्तित्व सिद्ध किया जा रहा है। जो यह कहा है चारुवाक जनोंने कि क्या है यह चैतन्य शरीर इन्द्रिय विषय और मनका गुण। यही है पृथ्वी आदिक भूत समुदाय, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इनका जहाँ समागम हुआ तो उससे शरीर, इन्द्रियां, विषय और संज्ञा इनकी अभिव्यक्ति हुई और उनसे फिर चैतन्य की अर्थात् ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती है। जैसे कोदों महवा आदिक कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं कि जिन्हें पीसे जायें, सड़ाते जायें तो उनसे एक मदिराकी अभिव्यक्ति हो जाती है इसी प्रकार इन पृथ्वी आदिक भूतोंसे चैतन्यकी अभिव्यक्ति होती है, ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि प्रथम तो यह निरख लें, हुई अभिव्यक्ति, पर जो अभिव्यक्ति हुई है वह तो ज्ञान दर्शन रूप है ना, चैतन्य स्वरूप है ना। इतना तो मानोगे कि कुछ विलक्षण चीज बनी है तो लो अभिव्यक्तिकी बात तो पीछे करेंगे। इतना तो निर्णय हो ही गया कि शरीर विपरीत लक्षण वाला है और चैतन्य विपरीत लक्षण वाला है दोनोंकी जाति एक नहीं है।

कार्यकी विजातीय पदार्थसे अभिव्यक्तिका अभाव––अब अभिव्यक्तिकी बात सुनो। इसीके समर्थनमें चारुवाक सिद्धान्तमें यह बताया है कि तत्त्व तो ४ हैं–पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु। इनका जब मेल बनता है तो शरीर इन्द्रिय, विषय, मन इनकी अभिव्यक्ति होती है और उनसे फिर चैतन्य प्रकट होता है, ऐसा जो तुम्हारा कहना है सो खेदकी बात तो यह है कि ये ही चारुवाकजन जब एक दर्शनका निराकरण कर रहे थे जो कि आकाशसे शब्दकी उत्पत्ति मानते हैं। तो उन्हें यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दोष दिया था कि आकाश अमूर्त है, शब्द मूर्त है। तो अमूर्तसे मूर्त कैसे प्रकट हो सकता है ? यह बात यहाँ भूल गये, उन्हें यह ध्यान नहीं रहा कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये तो हैं अचेतन, अचेतनसे चेतन कैसे बन उठेगा ? जो जिससे विलक्षण धर्म वाला है वह उससे उत्पन्न नहीं हुआ करता।

सद्रूप चैतन्यकी अभिव्यक्तिमें चैतन्यकी अनाद्यनन्तकी सिद्धि—हे आत्मत्वप्रतिषेधक जनो ! मान लो तुम्हारा ही कहना थोड़ी देरको मान लिया जाय कि इन चार भूतोंसे ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती है। तो अभिव्यक्तिका अर्थ है निरावरण होना। जैसे कोई चीज थी और उसपर कोई कपड़ा पड़ा हो और कपड़ा अलग कर दिया जाय तो चीज दिखने लगती, प्रकट हो जाती। इसी प्रकार चैतन्य इस ही भूतमें था। वे मिल गए तो उससे चैतन्य प्रकट हो गया। ऐसा कदाचित् मान लिया जाय तो यह बतलावो कि चैतन्य पहिलेसे था या नहीं था ? या सत् असत् रूप था ? तीनमेंसे क्या बात थी ? क्या उन पृथ्वी, जल आदिकमें यह ज्ञान पहिलेसे था ? और वही ज्ञान अब प्रकट हुआ है ? क्या ऐसा है ? अथवा चैतन्य पदार्थ नहीं था और अब प्रकट हो गया है ? कौन सा विकल्प इष्ट है ? यदि कहें कि चैतन्य पहिलेसे था और अब मिल-जुल जानेपर उसमेंसे चैतन्य प्रकट हो गया तो चैतन्य अनादि अनन्त सिद्ध हो जायगा। पहिले था और जो था वह कभी मिटता नहीं। तो यों चैतन्य अनादि अनन्त हो गया। तब जो ऐसा कहा कि जैसे कुछ पदार्थ मिलकर एक बिजली उत्पन्न कर लेते हैं इसी तरह ये पृथ्वी आदिक मिल जाते हैं तो वह ज्ञान विद्युत् बनता है। यह बात तो नहीं रही क्योंकि वह ज्ञान और चैतन्य पहिलेसे था। और जब था तो हमेशा ही उसकी अभिव्यक्ति रही किसी न किसी रूपमें। सो यह बात तो तथ्यकी है, पूर्वभवमें ऐसा शरीर बना तो चैतन्य है अब अगले भवमें ऐसा शरीर बना तो चैतन्य है अब अगले भवमें अन्य शरीर बनेगा, वहाँ चैतन्य है तो सत् की अभिव्यक्ति हुई है वह इस दिशामें ठीक है कि हाँ वह सत् है और स्वरूप मात्र है और भिन्न-भिन्न शरीरोंमें इसकी प्रकटता होती रहती है। तब फिर परलोकका जो अभाव बतलाते वह भी नहीं रहा, परलोक भी हो गया।

सद्रूप आत्माके अनिर्णयमें संकटोंका बोझ—चारुवाकका तो यह सिद्धान्त है कि परलोक कोई चीज नहीं। यह ज्ञान भूतोंके मेलसे बन गया है तो इस ज्ञानको दु:खी क्यों करते ? जैसा मनमें आये वैसे रहो, भोगो, खावो, पियो। कष्ट क्यों देते ? यह उनका मंतव्य है, लेकिन आत्मा तो, चैतन्य तो सर्वदा सत् हो गया, तो किसी न किसी पर्यायमें वह सदा रहा है और सदा रहेगा, तो इससे पहिले भी परलोक था और आज जिस भवमें हैं उससे आगे परलोक होगा हम आत्मा हैं, चैतन्य स्वरूप हैं, सदा रहने वाले हैं। हम आप सबको दु:ख अनिष्ट है कोई भी प्राणी दु:खी नहीं चाहता। तब सुख शान्तिका यत्न करना चाहिए यह सबके चित्तमें हैं, पर शान्तिका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपाय क्या है इसका निर्णय न होनेसे जो मनमें आया उसी उपायको करते हैं शान्ति पानेके लिये ।

जगतके स्वरूपके यथार्थ निर्णयकी आवश्यकता – देखिये–प्रथम तो मोटे रूपमें इस जगतका और शरीरका स्वरूप समझमें रहना चाहिए । यह सारा जगत चार-अचर पदार्थोंका समुदाय चेतन और अचेतन पदार्थोंका यह समुदाय हमसे न्यारा हैं । हम न किसींका कुछ परिणमन कर सकते हैं न कोई दूसरा पदार्थ मेरा परिणमन करता है । मैं अपने आपमें ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य किया करता हूँ । भले ही परिणमन में परका निमित्त रहता है, पर परिणमन प्रत्येक पदार्थका अपने आपमें अपनी अकेली वृत्तिसे ही हुआ करता है । तब मेरा शरण कौन है इस दुनियामें ? मैं किसकी शरण पकड़ूं । जिसको दिलमें बसाऊँ किसको अपना कल्याण कारी मानूं, जगतमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, एक तो यह बात चित्तमें रहना चाहिए अब दूसरी बात सुनिये ।

शरीरके यथार्थ स्वरूपके निर्णयकी आवश्यकता—जिस शरीरसे हमारा सम्बन्ध है, अनुराग बन रहा है वह शरीर भी क्या वस्तु है ? मैं आत्मा एक शाश्वत पदार्थ हूँ और इस शरीरका मूलभूत परमाणु, परमाणु भी शाश्वत पदार्थ है । मैं चेतन हूँ, ये समस्त पदार्थ अचेतन हैं और इन अणुवोंका जो कुछ इस शरीर आकार रूप ढाँचा बनता है, यह एक है, मायारूप है, वास्तविक नहीं है, बिछुड़ जायगा, और फिर जो कुछ भी मायारूप बना वह भी बड़ा घिनावनारूप है मैं चौकी दरी आदिक पदार्थ जो स्थावर जीवोंके शरीर है वे भी पिण्डरूप हैं, मायारूप हैं, उनमें माँस मज्जा खून पीप आदिक नहीं है । जिस शरीरमें बड़ा अहंकार किया जा रहा है वह राध रुधिर मलपूरित थैली है । तो इस अपवित्र शरीरका स्वरूप और इस जगतके मायामयी पदार्थोंका स्वरूप समझमें आये तो चित्तमें ईमानदारीके साथ धर्मपालनकी बात आ सकती है । अन्यथा धर्मपालनके लिये क्रियाएँ भी करते जायें लेकिन मोह न छूटेगा, पर्याय बुद्धि न छूटेगी । ऐसा पक्का निर्णय हो कि यहाँ कोई मेरा शरण नहीं है, सो मैं सर्वप्रकार गुप्त रहकर अपने आपमें धर्म साधना करूँगा और सर्व सङ्कटोंसे मुक्ति पाऊँगा ऐसी भावना तत्त्वज्ञानीकी बनती है ।

ज्ञानके सर्वथा सत् और सर्वथा असत् का निराकरण—नास्तिक लोग आत्माका अस्तित्त्व नहीं मानते, उनके संतव्यमें पृथ्वी, जल अग्नि, वायु इन चार भूत पदार्थोंसे चैतन्य के ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती हे । उनसे पूछा जा रहा हे कि इस शरीरसे जो एक ज्ञान बिजलीकी उत्पत्ति माना हे तो वह ज्ञान विद्युत् क्या पहिलेसे सत् था या न था । यदि पहिलेसे सत् था तो वह अनादि अनन्त सिद्ध हो गया यदि वह पहिलेसे सत् न था तो इसका अर्थ यह है कि वह नया उत्पन्न हुआ हैफिर व्यक्ति क्यों मानते हो ? जो सर्वथा असत् है, पहिले न था, उसकी न अभिव्यक्ति होती है और न उत्पत्ति होती है, अतएव इस ज्ञानको मानते हुए सर्वथा सत् नहीं मान सकते हो, क्योंकि सत् बताने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर तुम्हारे ततसे निराकरण नहीं हुआ, असत् भी नहीं कह सकते तब क्या इसे सत्‌रूप कहोगे अर्थात् ज्ञान कथंचित सत् है और कथंचित असत् है, उसकी व्यक्ति इस शरीर द्वारा हुई हे। यदि ऐसा कहो तो यह बात तो जैन दर्शन सम्मत है अर्थात द्रव्य-दृष्टिसे यह चेतन सत है और पर्यायदृष्टिसे यह चेतन असत् है, जो आज इस शरीरमें प्रकट हुआ है, पर्यायरूपसे शरीरोंमें रहनेरूपसे शरीरके सम्बन्धसे यह असत् है और उसकी अभिव्यक्ति हुई है लेकिन द्रव्यरूपसे वह सत् ही है और फिर इस अनेकान्तको माने बिना तो किसीका भी गुजारा नहीं। ये चारुवाक लोग जो केवल पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन भूतों को ही अस्तित्व मानते हैं उनकी भी सिद्धि न हो सकेगी। तो कथंचित सत् और कथंचित असत् नहीं माना, ये पृथ्वी आदि पुद्गल जो इस सकलमें आज बने हुए हैं क्या यह सकल इनकी इसीप्रकार पहिलेसे थी ? नहीं। नये नये आकारोंको ये भौतिक पदार्थ धारणकर रहे हैं तो इस आकारके रूपमें धारण करना यह तो है एक असत्‌की अभिव्यक्ति किन्तु यह किसी न किसीरुपमें अणुमात्रमें पहले भी था, कथंचित सत् और कथंचित असत्। ऐसा अनेकान्त न मानने पर तो तुम अपनी पृथ्वी आदिककी भी सिद्धि नहीं कर सकते।

प्रत्येक पदार्थ द्रव्यदृष्टिसे सत्, पर्यायदृष्टिसे असत् – यह चेतन, यह ज्ञान द्रव्यदृष्टिसे सत् है, पहिले था, अब है, आगे रहेगा, किन्तु पर्यायदृष्टिसे यह पहिले मनुष्य न था, आज मनुष्य है, कल और पशु कहलायेगा, देव कहलायेगा, अन्य पर्याय रूपमें इसकी अभिव्यक्ति होगी और जो यह भी समझमें आ रहा हैं कि जब यह देव था तब देव जैसे भवोंरूप यह ज्ञान परिणमा करता था और आज यह मनुष्य है तो मनुष्यके अनुकूल भावोंमें यह ज्ञान परिणमता है। यह चैतन्य जब पशुपर्यायमें जायगा तो पशुके जैसे भाव होते हैं उन भावोंरूप ज्ञान परिणमेगा। मनुष्य दाल रोटी, हलुवा पूरी खाना चाहता हैं। और पशु घास खाना चाहते है। उनको उस प्रकारके परिणाम होते हैं। मनुष्यके परिणाम और ढंगके होते हैं। कीट मकोड़ामें यह जीव पहुंच गया तो उसके उस तरहके परिणाम होंगे। तो ये जो न्यारे-न्यारे जीवोंमें परिणाम हो रहे हैं इसे क्या कहेंगे ? नयी अभिव्यक्ति कहेंगे, पुरानी बात तो कहेंगे नहीं। पर्याय दृष्टिसे चेतन अभिव्यक्ति होता है किन्तु द्रव्यदृष्टिसे यह चेतन सत् है। यह प्रकट नहीं होता है स्वतंत्र तत्त्व है। शरीरमें जीव उत्पन्न होता है, शरीरसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ऐसा माना जा रहा है इस चारुवाक सिद्धान्तमें और उसके लिए दृष्टान्त यह दिया था कि जैसे कोदो, महुवा, गुड़े धतूरा आदिकमें कोई मदिरापन नहीं है, पर इनके सड़ाने गलानेसे या उनकी जो विधि है उस तरह प्रयोग करनेसे मदशक्ति उत्पन्न होती है यह बात तुम सिद्ध न कर सकोगे। जो दोष एक चैतन्यको न माननेके लिये दे रहे हो वही दोष इसमें आयगा क्योंकि बदलावो वह मदशक्ति यदि सर्वथा सत् है तो उत्पन्न क्या किया ? वह था ही शक्तिरूपमें, यदि सर्वथा असत् है तो असत्‌का प्रादुर्भाव होता ही नहीं है और सद् सद्‌रूप मानते हो तो यह बात हो गयी कि गुड़ आदिकमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मदिराकी शक्ति तो है और व्याप्ति हुई है किसी प्रयोग विशेषसे। अनेकान्तके माने बिना तो तुम अपना दृष्टान्त भी सिद्ध नहीं कर सकते। समस्त पदार्थ जगतमें जो कुछ हैं वे द्रव्यदृष्टिसे सत्‌रूप है और पर्यायदृष्टिसे असत्‌रूप है। और जब अभिव्यक्ति होती है तो पर्यायदृष्टिसे भी सत् बन जाता है, वह और कुछ नहीं है। जो एक पदार्थ है कुछ भी हो उसकी ही नाना अवस्थायें बनाती चली जाती है। आत्मा स्वतंत्र एक पदार्थ है, उस हीमें ये सब बातें बीती जा रही है।

ज्ञानमयताके अनुभवका फल हम ज्ञानमात्र है। सभी लोग अपने आपमें उस-उस प्रकारका अनुभव किये जा रहे हैं, पर यथार्थ रूपसे उसका अनुभव कर लिया जाय तो संसारके समस्त संकट इसके दूर हो सकते हैं। इस जीवने शान्तिके लिये अनेक उद्यम किया। कहाँ कहाँ नहीं दौड़ा भागा, क्या क्या इसने परिणतियाँ नहीं की किन्तु एक अपने आपमें जो सुगम और सहज है ऐसी वृत्ति नहीं बनाया। यथार्थरूपसे जो मैं हूँ उसको उस रूपसे नहीं अनुभवा। इतनी बात न कर सकनेके कारण यह प्राणी नाना प्रकारके शरीरोंमें बँधता चला जा रहा है। कभी पेड़ हुआ कभी पृथ्वी हुआ, कभी कीट हुआ कभी पशु हुआ, कभी मनुष्य बना, तो जिस भवमें यह जीव पहुंचा उस ही भवके साधनोंमें, उस ही भवके शरीरमें इसने अपने आपको माना कि यह मैं हूँ। क्या हूं अन्तरमें निरखिये और फिर कुछ बाहरमें देखिये सारा यह लोक समूह सारा यह पदार्थस्वरूप इसमें क्या हमारा है। यहाँके धन वैभव इज्जत पोजीशन मेरे कुछ नहीं है इन बाहरी चीजोंको अपनापनकी मान्यता करनेसे ही यह संसारका भटकना बनता चला जा रहा है।

परकी इष्ट अनिष्ट कल्पना ही दुःखका हेतु—किसीको इष्ट माना किसी को अनिष्ट माना, इष्ट अनिष्ट बुद्धिसे अपने आपका यह सब कुछ हाल हो रहा है। अरे जितने भी क्लेश होते हैं वे अपने भावोंसे होते हैं, जितने भी आनन्द होते हैं वे अपने भावोंसे होते हैं। मूलमें एक यही भूल कर ली कि मेरा सुख दुःख आदिक सब घरके इन चार जीवोंपर निर्भर है। इसी भूलके कारण इस जीवको बहुतसे क्लेश सहने पड़ रहे हैं। सभी लोग जानते हैं कि सिंहको और कुत्ताको। कुत्ता बड़ा उपकारी जानवर है सिंहकी अपेक्षा। रोटीके दो टुकड़ोंमें ही वह अपने मालिककी पूरी नौकरी बजाता है। जितनी सेवा एक पहरेदार नहीं कर सकता है उतनी सेवा कुत्ता करता है। किसी अपरिचित व्यक्तिको वह आने नहीं देता। अब तो ऐसा भी होने लगा है कि कुत्ते चोरोंका भी पता लगा लेते हैं। तो कितना उपकारी जीव है कुत्ता ? और, एक सिंह को देखो—वह किसीका कुछ उपकार भी करता है क्या ? वह तो महा अनुपकारी है, दुष्ट है, हिंसक है। लेकिन किसी सभामें किसीको कह दिया जाय कि इन साहबका क्या कहना है, यह बड़े उपकारी हैं, यह तो कुत्तेके समान हैं। अरे प्रशंसा ही तो की। कुत्ता उपकारी जीव है और उसकी उपमा दी गई है भाई साहबको, पर भाई साहब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भी अच्छा न मानेंगे और सुनने वालोंको भी अच्छा न लगेगा। और, अगर यह कह दिया जाय कि अमुक भाई तो सिंहके समान है, तो कहा तो बुरा है जैसा दुष्ट हिंसक निर्दय, अनुपकारी सिंह होता है ऐसे ही यह भाई साहब हैं। कहा तो यह है पर भाई साहब यह बात सुनकर बड़े खुश हो जाते हैं और सुनने वाले लोग भी खुश हो जाते हैं। यह फर्क कैसे आया ? यह फर्क दृष्टिका है।

बहिरात्मा अन्तरात्माके चिन्ह—एक बहिरात्मा और एक अन्तरात्माकी उपमाका सूचक है यह दृष्टान्त ! मुकाबलेका कुत्तेकी दृष्टि एक ऐसी बुरी है जिसके कारण उसमें सैंकड़ों गुण होनेपर भी उन गुणोंसे कुत्तेकी कोई प्रशंसा नहीं होती। वह अवगुण क्या है ? लोकव्यवहारमें तो यह कहलो कि वह अपनी जातिके अन्य कुत्तोंको देखकर भोंकता है, हम यहाँ परमार्थकी बात कह रहे हैं—कुत्ते में एक निमित्त दृष्टिकी मुख्यताका अवगुण है। उसे कोई लाठी मारे तो वह लाठी मारने वालेपर नहीं हमला करता है, वह तो समझता है कि इस लाठीने मुझे हैरान किया सो वह लाठीको चबाता है किन्तु सिंहमें यह निमित्त दृष्टिकी मुख्यता नहीं है। वह मारने वाले की बन्दूक लाठी आदिको छोड़ देता है, सीधे उस मारने वालेपर टूट पड़ता है। वह जानता है कि मुझे मारने वाला यह मनुष्य है। तो यह अन्तर है ज्ञानका और अज्ञान का। ऐसे ही भीतरकी दृष्टिमें ज्ञानी और अज्ञानीमें अन्तर है। अज्ञानी तो सोचता है कि मुझे तो अमुक भाईने दुःखी किया। पर ज्ञानी सोचता है कि कोई भी मुझे दुःखी नहीं बनता, मैं स्वयं उस प्रकारका परिणाम बनाकर दुःखी हो जाता हूं। देखिये एक निमित्त उपादानकी ये सब बातें हैं पर एक रुचिका फर्क है, शुद्ध दृष्टिका फर्क है। जब कोई बात सिद्ध करे तो वहाँ अनेकान्तसे सभी प्रकारका प्रतिपादन होना चाहिए, किंतु जहाँ एक आत्महितके लिये कोई योग बनाता है वहाँ उपादानकी रुचि और आत्मतत्त्व का अवलोकन और अध्यात्म विवरण मनन ये मुख्य होना चाहिए। मैं आत्मा हूँ, शान्ति चाहता है और शान्तिके लिये हमने नाना प्रकारके उद्यम किया है पर उन सब उद्यमोंसे इस आत्माको शान्ति प्राप्त नहीं हो सकी। सब कुछ इसने किया पर एक कार्य नहीं किया जो खुद है सही रूपमें गसे मान न सका और शेष अनेक बातें कर डाली पर लाभ नहीं हुआ।

ज्ञानका आधार मात्र चैतन्य—यह ज्ञान चैतन्य शरीरसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु इसके आधारभूत चैतन्य पदार्थ है। इसके खिलाफ चारुवाक लोग मानते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार तो तत्त्व हैं और उनका समुदाय होनेपर शरीर इन्द्रिय विषय, मन, ये बन जाते हैं। और फिर इनसे चैतन्य ज्ञान उत्पन्न होता है। अच्छा यह बतलावो कि जो ज्ञान उत्पन्न होता है चैतन्य बना है वह चैतन्यके बननेसे ये पदार्थ उपादान कारण हैं या सहकारी कारण हैं ? ज्ञानकी उत्पत्ति होनेमें यह शरीर उपादान कारण है अथवा सहकारी कारण है कोई भी वस्तु उत्पन्न होती है तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसकी उत्पत्तिमें दो कारण होते हैं उपादान कारण और सहकारी कारण। जैसे घड़ा बना तो उपादान कारण है मिट्टी और निमित्त कारण है कुम्हार, दंड चक्र आदिक। इसी प्रकार यह जो ज्ञानरूप कार्य बना है और उसका कारण माना है इस शरीरको पृथ्वी आदिकको तो यह भूतचतुष्टयमें ज्ञानका उपादान कारण है या सहकारी कारण है? उपादान कारण तो कह नहीं सकते क्योंकि उपादान कारणमें जो कुछ बात होती है वह कार्यमें पहुंचती है। जैसे मिट्टीमें जो कुछ भी बात है वह पूराका पूरा घड़ेमें पहुँच गया। घड़ा यदि मिट्टीरूप रहा तो इस भूतमें पृथ्वी आदिकका कार्य यिधि रूपसे है; ज्ञान, तो ज्ञान भी जड़ ही रहा। अचेतन रहे, पृथ्वी आदिक रूप रहे, किन्तु ऐसा कहाँ है? ज्ञान तो जानता है प्रतिभासात्मक अर्थात् यह उपादान कारण तो नहीं बना। सर्वत्र निरख लो स्वर्णमें जो चीज बनेगी वह स्वर्णरूप बनेगी ना। इसी तरह शरीर उपादानसे यदि ज्ञान उत्पन्न होगा तो ज्ञानको जड़वत्, जड़रूपात्मक होना चाहिए, अथवा जो तत्त्वकी बात है वह शरीरमें होना चाहिए, किन्तु ऐसा है नहीं इस कारण यह समझना कि ज्ञानका उपादान कारण शरीर नहीं है। ऐसा नहीं हो रहा कि यह भूत चतुष्टय अपने जड़ाकारको छोड़कर चेतनरूप बन गया हो यह भी नहीं है।

उपादानके सदृश कार्यका प्रादुर्भाव— यह भी नहीं होता कि यह शरीर चेतनाकार तो बन गया और अपना-अपना जो स्वभाव है—जैसे पृथ्वीका स्वभाव है धरना, अपने आपपर बोझ रख लेना' जलका स्वभाव है ईरण अर्थात् गमन करना, नीचे स्थलको ढलना, अग्निका स्वभाव है उष्णता और वायुका स्वभाव है बहना। क्या इन्होंने अपना स्वभाव छोड़कर चैतन्यरुपसे अंगीकार किया हैं? नहीं। इस कारणउपादान कारण मत समझो कि ज्ञानका यह शरीर उपादान है। इस प्रसंगमें तो चारुवाक लोग यह कहते कि उपादानके विरुद्ध भी कार्य उत्पन्न होता हैं, यह कैसे कहा कि जो बात कारणमें हो वही बात कार्यमें होना चाहिए। दीपक है कज्जलका उपादान है पर दीपक तो है जगमग और उस काले पदार्थकी उत्पत्ति कज्जलसे विरुद्ध प्रदीपसे हुई ना तो यह कैसे कह दिया कि उपादान की तरह कार्य होता है। मिट्टीका घड़ा बन गया तो घड़ा भी मिट्टीरुप बन गया, यह हठ कैसे बने? दीपकरुप कज्जल नहीं बनाता वह बिल्कुल बिलक्षण चीज है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता, किन्तु उस प्रदीपमें दीपआदिक हैं कि नही? तो उससे जो कज्जल उत्पन्न होता है कह भी बिलक्षण चीज है उस पुद्गलसे ये अवस्थाएँ बन रही हैं। जितने भी उपादानमें जो मूलभूत धर्म है वह धर्म रहेगा पुद्गलसे पुद्गल बनेगा, जीवसे जीवकी पर्याय बनेगी। जो जिस रुप हो उस रुप ही रहेगा। यह शरीर अचेतन है, जड़ है, इससे चेतन अथवा ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि यह कहो कि देखो ज्ञान भी सत् है और शरीर भी सत् है तो सत्की अपेक्षा जाति तो एक हो गयी इसलिए सदृश्य कार्य बन गया। तो यों तो सब कुछ एक हो जायगा। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार न रहेंगे, वे सब सत् हैं और सत्से सत्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनता चला जा रहा है।

अर्थ क्रियायें, परिणतियों द्वारा पदार्थत्वका ज्ञान—भाई जितने प्रकार प्रकारकी अर्थ क्रियायें होती हैं, परिणतियाँ बनती हैं उतनी प्रकारके पदार्थ हैं। चैतन्य पदार्थोंमें चैतन्य जैसी ही परिणतियाँ बनती हैं। भाव होंगे, ज्ञान होंगे और अचेतन जैसी ही परिणतियाँ बनेंगी, पर अपने आपमें अनुभव करके देख लो जिसमें हम उस उसका अनुभव करते हैं उस अनुभवमें शरीर नहीं आता। बड़े गहन अंधकारमें आप पड़े हों, वहाँ मैं मैं का अनुभव तो आपको सब हो रहा है पर शरीरका दर्शन नहीं हो रहा है। शरीर स्पष्ट समझमें नहीं आ रहा और उस ही शरीरमें रहने वाले आप उस उसके प्रत्यय द्वारा अपने आपके स्वरूपका स्पष्ट भान कर रहे हैं। मैं देहसे भी न्यारा ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ। देखिये—इस प्रकारकी भावनाका अभ्यास बनेगा तो यह और भी विवाद स्पष्ट हो जायगा। मैं ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ, देहसे भी न्यारा हूँ। जैसे कोई तैरने बात सीखना चाहे तो पानीमें गिरे और फिर तैरनेके ढङ्गको शब्दोंसे ही दुहराता रहे तो वह तैरना नहीं सीख सकता। उसे तो तैरना सीखनेके लिये तैरनेका अभ्यास करना पड़ेगा, इस ही प्रकार हम बातोंसे सब कुछ कहते जायें, पर जो बात कह गए हैं उस रूपसे अपने अन्तरङ्गमें उसका प्रयोग न करें तो क्या हमें अनुभव जग सकेगा? नहीं जग सकता।

परसे हटकर स्वकी भावनाका फल—जरा इस देहसे हटे हुए और अन्तरङ्गमें किसी एक विलक्षण धाममें कुछ प्रवेश करते हुएसे रहकर बनकर जना भावना तो कीजिए कि मैं देहसे भी न्यारा ज्ञानमात्र तत्त्व हूँ। बारबार ऐसी भावना करिये। देखिये! यह भाव एक आध्यात्मिक मूल मंत्र हैं। अपने आपका मंत्र है, अपने भावों का मंत्र है। इसकी सिद्धि होती है तो वह स्वानुभूतिके रूपमें होती है। जरा अपने आपमें आते जायें, कषायोंको दूर करके जरा अपने अन्दरमें प्रवेश करें मैं देहसे न्यारा ज्ञानमात्र हूँ, मेरा इस लोकमें अणुमात्र भी कुछ नहीं है। देखिये! इसी भावनाका यह प्रसाद है कि परमात्मतत्त्व प्रकट होता है। जिन जिनेन्द्रदेवकी हम उपासना करते हैं वे इस भावनाके ही फलसे परमआत्मा बने हैं और उनकी उपासना भी हम इसलिए करते हैं कि जो बात उनमें प्रकट हुई है वह मुझमें भी प्रकट हो सकती है। उस ही मार्गसे मैं भी चलूँगा इसके लिए गुणानुराग किया जा रहा है प्रभुस्वरूपमें। यों अपने आत्माका भाव करना धर्मपालनके यिए अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य है।

तत्त्वजिज्ञासा बिना नरजन्मकी निरर्थकता—पृथ्वी आदिक भूतोंका पिंड भूत यह शरीर जुदी वस्तु है और ज्ञान दर्शन उपयोग वाला आत्मा जुदा पदार्थ है। इनका परस्पर कार्य-कारण भाव नहीं है। आत्मासे शरीर उत्पन्न होता है यह भी नहीं है और शरीरका उपादान कारण पुद्गल है और चेतनका ज्ञानका उपादान कारण आत्मा है। विजातीय उपादानसे विजातीय कार्य उत्पन्न नहीं हुआ करता, घड़ा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से कपड़ेकी उत्पत्ति होते देखा है किसीने ? मिट्टीसे मिट्टीकी ही पर्यायोंका उत्पाद हुआ करता है। यहाँ यदि यह कहोगे कि ये पुद्गल भी सत् हैं और जीव भी सत् हैं। तो सत्त्वकी दृष्टिसे दोनों एक जातिके हो गए तब फिर शरीरसे जीवकी उत्पत्तिमें क्या विरोध है ? यों केवल सत्त्वकी दृष्टिसे सजातीय मानकर उपादान उपादेय बनानेका यत्न किया तो फिर ये पृथ्वी आदिक चारों भी न रहेंगे। ये भी सब सत् हैं। किसीसे कुछ उत्पन्न हो जाय तो पृथ्वी जल आदिक चार चीजें नहीं रही। यों तो सारा विश्व एक कल्पनामात्र रह जायगा। शरीर न्यारा है, जीव न्यारा है ऐसा ही निर्णय रखना चाहिए। देखिए ! कैसी कैसी कुयोनियोंमें जन्म ले लेकर आज इस हितकारी मनुष्य पर्यायमें आये हैं और जहाँ जैन शासनका धर्मका, धर्मात्माओंका सम्बन्ध भी मिला हुआ है ऐसे इन पवित्र क्षणोंको नास्तिकतामें ही बिताया जाय, कषायोंकी पूर्तिमें ही कल्पनाओं कल्पनाओंमें ही समय गवां दिया तो इससे और अधिक अनर्थकी बात क्या होगी ?

आत्मामें ज्ञानके सर्वथा अभावकी असिद्धि - अपने आत्माको निरखो और उस रूपमें निरखिये कि यह आत्मा एक चैतन्यप्रकाशमात्र है। आत्माकी सिद्धिमें और भी सुनिये। प्राणीका यह आद्य चैतन्यके उपादान पूर्वक होता है क्योंकि चैतन्य की पर्याय है। यहाँ यों समझिये कि जिस जन्मके बाद जो हमारा जिन्दगी भर ज्ञान चलता रहता है वह ज्ञान-ज्ञानपूर्वक चल रहा है। इस ज्ञानसे पहिले क्या ? उससे पहिले भी ज्ञान। तो जहाँ हमारे जीवनके ये सारे ज्ञान ये सब चैतन्यकी परिणतियाँ चैतन्यकी परिणतियां पूर्वक चल रही हैं तो ऐसे ही यह समझना कि इस जन्ममें सब से पहिली बात जो चैतन्य हुआ अर्थात् जन्म समयमें जो चेतना आयी है वह चेतना भी चैतन्य ही पूर्वक है। जैसे कि हमारे जीवनके और चैतन्य उसके पहिले चैतन्यपूर्वक है इसी प्रकार वह पहिले भी चैतन्य पहिले चैतन्यपूर्वक है अर्थात् पूर्वभवमें भी यह चैतन्य था, उस चैतन्यका ही यहाँ अवतार हुआ है। इससे पूर्वभवकी सिद्धि होती है। जब हमारा इस समयका ज्ञान इससे पहिलेके ज्ञानपूर्वक है, इस ज्ञानके अन्वयमें इस ज्ञान की एक कलात्मक लैनमें जब ज्ञान ही ज्ञान था तो सबसे पहिले पूरा हुआ जो ज्ञान है वह भी ज्ञान पूर्वक ही रहा, और वह ज्ञान था पूर्वभवमें। इसी प्रकार जब हमारा इस समयका ज्ञान आगेका ज्ञान उत्पन्न कर देता है तो वर्तमान ज्ञान भविष्य ज्ञानकी संतान को बनाता है तो समझ लीजिये कि इस भवका जो अन्तिम ज्ञान होगा मरण समय का ज्ञान होगा वह भी आगेके ज्ञानका बनाया हुआ ही रहेगा। इससे होती है आगेके लोककी सिद्धि। यह आत्माके भवसे पहिले भी था और इस भवके बाद भी होगा। यह एक सद्भूत पदार्थ हैं इसका विनास नहीं होता। रहेगा यह। और रहेगा तो क्या हम इसी प्रकार दुःखमें ही मरा करेंगे ? यह इष्ट है क्या ? जैसे वर्तमानमें आकुलताएँ भोगते हैं, राग बढ़ाकर मोह बढ़ाकर पर वस्तुको अपनाकर जो हम आकुलताएँ भोगते हैं और उसीमें चतुराई समझते हैं। यह अपना ही तो घर है। यह सब कुछ तो करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ही चाहिए। इसीसे लोकमें हमारी इज्जत है, बड़प्पन है, भले कहलाते हैं। इसीसे हमको लोग भरा पूरा और महान समझते हैं ऐसी अपनी चतुराई भी समझते हैं क्या ऐसी गंदी चतुराई बनाये रहना और आकुलताएँ भोगते रहना यह तुम्हें इष्ट है क्या ?

आत्माके एकत्वकी ही सिद्धि – लालच करके लाभ क्या मिलेगा ? रहेगा तो यह आत्मा एक अकेलाका ही अकेला। मायाचार करके सिद्धि क्या होगी ? यह तो अकेला ही अकेला रहेगा इसमें क्या बात और ला सकेंगे ? यों मान किस बातका करना। यह तो एक अमूर्त चैतन्य पदार्थ है, इसको तो कोई जानता भी नहीं, मानता भी नहीं। किसका यहाँ क्या करना ? घमंड किस बातका ? क्रोध किसपर करना ? किसीने मुझे देखा है क्या ? कोई मेरेको गाली दे भी सकता है क्या ? मुझे समझा ही नहीं तो वह मुझे गालियाँ क्या दे सकेगा ? कोई मुझे जानता ही नहीं तो मेरी प्रशंसा अथवा निन्दा किया कर सकेगा। जब यह उपयोग हमारे आधारभूत आत्मप्रभु के निकट बैठता है, रहता है तो लोकमें फिर इसे कोई आपत्ति नहीं रह पाती। बड़े संकट दिखते हैं जब बाहर आँखें खोलते है। कुछ संकटसे भी हैं और उनसे कोई गुण मान लिया जाता है, पर जहाँ इन चर्म-चक्षुवोंको बन्द किया, इन इन्द्रिय और मनकी वृत्तिको बन्द किया, वहाँ केवल अपने आपमें अपना ज्ञानप्रकाश और आनन्द ही अनुभवमें आता है। इस चेतनका उपादान कारण चेतन हैं जैसे कि जिन्दगीके इन अनन्तानन्त चेतनोंकी परिणतियोंका उपादान पूर्व चैतन्य है और कार्य अगला चैतन्य है इसी प्रकार जो चैतन्यकी आदि है में चेता जायगा वह कुछ नया सत् नहीं बन गया, और जो अन्तिम चैतन्य होगा, मरण समयका चैतन्य परिणमन होगा वह अगले परिणमनको करेगा। यों चैतन्य भूतसे उत्पन्न नहीं होता, उसका आधारभूत आत्मा है। और आत्मामें ही ज्ञानप्रकाश जगता है। शरीरमें ही आत्मा मानने वाले तो अनन्त जीव हैं। ये चारुवाक लोग जरा युक्तियां देकर तर्कसे सिद्ध करना चाहते हैं तो इसे कैसे बोला कि ये दार्शनिक हैं, ऋषि लोग हैं। चाहे आत्माके खण्डनका सिद्धान्त बनायें पर जो एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक पड़े हैं वे और क्या काम कर रहे हैं ? वे सब प्रेक्टिकल चारुवाकके सिद्धान्तका समर्थन कर रहे हैं उन कीड़ा मकोड़ोंके जिह्वा नहीं, वचन नहीं मन नहीं ये वचनोंसे कुछ समर्थन नहीं कर पा रहे हैं। कुछ ही बिरले तत्त्वज्ञानियोंको छोड़कर सभी जीव इस शरीरको ही यह मैं हूँ ऐसा अनुभव कर रहे हैं, और, विवाद झगड़े भी लोकमें काहेके हैं ? परेशानी चिन्ताएँ भी लोकमें और किस बातकी हैं ? शरीरमें यह मैं हूँ ऐसा अनुभव करनेकी सारी परेशानियाँ हैं बड़े बड़े व्यापार, बड़े बड़े कष्ट अथवा लोकमें नेतागिरी आदिक अनेक प्रकारके श्रम उठाना आदि सब करनेका मूल आधार यही है कि इस शरीरको उन्होंने मान लिया कि यही मैं हूँ। एसी ही बुद्धि बना लेनेसे सब कष्ट भोगने पड़ रहे हैं।

आत्माका उपादान चेतनता— यह भूतपिण्ड चैतन्यका उपादान कारण

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है । यदि कहो कि सहकारी कारण है चलो मान लिया कि हमारे ज्ञानका हमारे चैतन्यका यह शरीर सहकारी कारण है तब उपादान कारण तो कुछ बताना होगा। वह तो हमसे भिन्न है ना, क्योंकि बिना उपादानके तो कुछ जगतमें पाया ही नहीं जाता। जो उपादान है वही आत्मा है । शायद यह कहो कि अनेक चीजें ऐसी बन गईं कि जिनका आधार कुछ नहीं है और पाई जाती हैं—जैसे शब्द ! शब्दका कोई उपादान कारण हो तो जरा पकड़कर बतलावो, हमारे हाथपर रख दो। शब्दका उपादान कारण यह है और यह जो बिजली है उसका उपादान कारण क्या ? मेघ होते हैं और उनमें बिजली चमकती है, उस बिजलीका उपादान कारण क्या कुछ भी नहीं ? और होता जरूर है। तो बिना उपादानके कुछ बातें पायी जाती हैं, तो ऐसा भी यह चैतन्य है, इसका भी उपादान कुछ नहीं है और पाया जाता है। ऐसा चारुवाक लोग अपना पक्ष रखते हैं । उनके समाधानमें कह रहे हैं कि शब्द और बिजली आदिकमें भी उपादान कारण है क्योंकि वह कार्य है । जो जो कार्य होते हैं उनका उपादान कारण अवश्य होता है। जैसे कपड़ेका उपादान कारण क्या है ? वह तंतु डोरा। घड़ेका उपादान कारण क्या है ? मिट्टी ! तो शब्द भी कोई कार्य है जो पहिले न था, आगे भी न रहे और वर्तमानमें हो रहा हो वे सब कार्य ही तो हैं। तो कार्य जितने होते हैं उन सबका उपादान कारण होता है।

उपादानकारणके अनुसार कार्यनिर्माण— दर्शनका उपादान कारण शब्द परिणतिके सदृश्य जो शब्द वर्गणायें हैं वे हैं और बिजली आदिकका उपादान कारण जिन परमाणुवोंमें वह चमक जगी है वह परमाणु उपादान कारण है । उपादान कारण बिना कोई भी कार्य नहीं होता । तो यह चेतन है और इसका सहकारीकारण मान लिया गया शरीर, तो उपादान कारण तो कुछ कहा। वही तो आत्मा है जिसे उपादान बतावेंगे। यदि यह कहो कि शरीरसे ही हम चेतनकी उत्पत्ति मान लेंगे क्योंकि देखा जाता है कि गोबरसे बिच्छू उत्पन्न हो जाते हैं। कभी कभी कूड़ा वगैरह पड़ा हो किन्हीं ईंटोंके नीचे तो उसमें बिच्छू उत्पन्न हो जाते हैं। तो जब इन भौतिक पदार्थोंसे ये उत्पन्न होते देखे जा रहे हैं तो अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति हो गई, इसमें क्या तुम दोष देते हो ? उत्तरमें कहते हैं कि वह भी तो एक जैसा सिद्ध किया जा रहा है, उस घटनाकी ही तो बात है। वहाँ भी वह जो बिच्छू चेतन है वह गोबर मिट्टी कूड़ा आदिसे उत्पन्न नहीं हुआ और जो शरीर बन गया उसमें भी उत्पन्न नहीं हुआ। वह चेतन तो चेतनपूर्वक ही होता है। बिच्छू आदिकका शरीर अचेतन है, वह अचेतन शरीर गोबर आदिकसे उत्पन्न हो जाय, पर उसका जो चैतन्य परिणमन है वह पूर्ण परिणमनसे ही होता है। जो बात अभी कही गयी थी वह इस प्रसङ्गमें भी घटा लेना चाहिए। अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति नहीं होती। कितनी तीव्र वासना है लोगोंके चित्तमें। शरीरसे न्यारा यह मैं कुछ हूँ ऐसी दृष्टि करनेकी भी उन्हें फुरसत नहीं है अथवा इस ओर कुछ भी दृष्टि नहीं जाती। और, इसी कारण जो कुछ हो रहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है. हो रहा था, होवेगा वह सब यही तो है, जन्म–मरण सुख–दुःख ये सब भंगे चले जा रहे हैं। अथवा शरीरसे उत्पन्न होता है चैतन्य अथवा कुछ अलग वस्तु है चैतन्य इसकी भी कथा छोड़ दो, पर है तो ना, इस समय चैतन्य । उस चैतन्यको शान्ति किस प्रकार मिले, इसका निर्णय भर करते जाइये ! अन्य बातोंको छोड़ कर दीजिए, तो निर्णय यह मिलेगा और अनुभव यह कहेगा कि जब यह चेतन अचेतनकी दृष्टिसे चैतन्यरूपसे बना रहता है उस समय इसे लोकमें कोई आकुलता नहीं होती।

परमें एकत्व बुद्धि ही दुःखका हेतु जब अपने आपके चैतन्यभावको छोड़ कर दृष्टिमें न लेकर बाहरी पदार्थोंको अपनाया जाता है वहाँ इसे आकुलता हो जाती हैं। इस प्रकरणमें चारुवाक अपना पक्ष रख रहा है कि हम तो यह मानते हैं कि जन्म समयमें जो चैतन्य जगा है वह तो नया नया जगा है उससे पहिले चैतन्य न था। और उसके बाद जिन्दगीभर जो अनगिनते चैतन्य परिणतियाँ चल रही हैं वे चैतन्यपूर्वक हैं। जैसे बनमें बाँसोंके परस्परमें रगड़नेसे अग्नि पैदा हो जाती है वह अग्नि तो बिना अग्निके उत्पन्न हुई है और उसके बाद फिर अग्निका जितना प्रसार होगा वह सब अग्नि प्रयोग होगा। अग्निसे अग्नि जलेगी यों ही प्रथम जो चैतन्य है वह शरीराकार रूप भूतपिण्डोंसे उत्पन्न हुआ वह चैतन्यसे उत्पन्न नहीं हुआ और इसके बाद फिर जितनी चैतन्यकी परिणतियाँ चलेंगीं, जानकारी चलेंगीं वे चैतन्यपूर्वक चलेंगी। यह भी एक उनका मनोरथ ही है, अपने आपका समझावामात्र है । वस्तुतः पहिली बार भी जो वहाँ अग्नि उत्पन्न हुई है वह भी बिना उपादानके नहीं हुई। ये जितने पिण्ड-रूप पदार्थ हैं पृथ्वी पत्थर जिनके रगड़नेसे अग्नि उत्पन्न हुई है ये सभी पदार्थ पुद्गल हैं और अग्निका काय भी पुद्गल है। उन पुद्गलोंसे पुद्गलकी पर्यायोंका जैसा सहकारी कारण हो, जैसी उनकी वृत्ति हो उस तरह उत्पन्न होती रहती हैं । अग्निकी शक्ति इन पदार्थोंमें और इन बाँसोंमें बराबर है, कहीं एक नई चीज नहीं बन गई। अग्निको बुझा देने वाला जल होता है और उस जलमें भी अग्निकी शक्ति पड़ी है। यह तो पुद्गल है, पुद्गलसे पुद्गलकी हर प्रकारकी सृष्टि बन सकती है। समुद्रसे भी कभी अग्नि निकलती है जिसे बड़वानल कहते हैं। जलके रगड़नेसे वह अग्नि हुई है ना। तो पुद्गलसे पुद्गलकी वृत्तियाँ बन जायें वहाँ यह समझना कि उनका उपादान था। तो वह चेतन एक है।

पृथ्वी जल आदि चतुष्टयकी पुद्गलसे पृथक्त्वकी असिद्धि- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये वास्तवमें चार तत्त्व नहीं हैं। तो पुद्गलसे पुद्गलकी बात बनती है और जीवसे जीवकी बात बनती है। यह चेतन चेतनपूर्वक होता है और ये समग्र रूप, रस, गंध, स्पर्श, अग्नि क्या है? वह स्पर्श ही तो है, यह पुद्गल पूर्वक होता है, आत्माका अस्तित्व है और एक अहं अहंके प्रत्ययसे जाना जाता है। सब लोग कुछ जान रहे हैं, जानना चाहते हैं, जाननेका यत्न करते हैं, वह सब कैसे हो रहा है?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिसमें वह जाननवृत्ति जग रही हो वही तो चैतन्य है, वही तो आत्मा है। उस आत्मामें यह चित्त वितर्क उत्पन्न होता है। जैसे बहुत बार पत्थरमें या बाँसमें जो अग्निका आविर्भाव होता है वह तिरोहितरूपसे उन पदार्थोंमें था और फि उनसे अग्नि उत्पन्न हुई है इसी प्रकार गर्भमें जो जीव आया है वह चैतन्य भी तिरोहित चैतन्य पूर्वक था हम नहीं जानते। यहाँ आया है कोई चैतन्य। उत्पन्न होता है कोई मनुष्य तो यहाँ आया तो है किन्तु वह तिरोहित रूपसे। यहाँ न था कहीं अन्यत्र था, कहीं से आया, गुप्त ढङ्गसे आया, इस प्रकारसे आया मगर था पहिले अवश्य। जैसे इस अग्निकी शक्ति पत्थरमें पहिलेसे तिरोहितरूपसे थी, अब प्रकट हुई है इसी प्रकार यह आत्मा भी कहीं भी हो, पर तिरोहितरूपसे था और गुप्त ढङ्गसे आकर यह प्रकट हुआ है, यह शरीरसे ही नहीं बन गया, शरीर प्रथक है और यह मैं आत्मा प्रथक हूं।

आत्मासे ही आत्मवृत्तियोंका प्रादुर्भाव – आत्माकी आत्माके ढङ्गसे वृत्तियाँ जगती हैं। सुख हो, दुःख हो, ज्ञान हो, दर्शन हो ये वृत्तियां आत्मामें जगती हैं और रूप, रस, गंध, स्पर्शमें इनके संचयमें जो वृत्तियाँ होती हैं वे सब शरीरकी वृत्तियाँ होती हैं। अब यह बात एक मोहमें है कि शरीरकी कुछ वृत्ति बने तो उसमें आत्मा ऐसा स्वीकार करता कि यह मेरी स्थिति है, मेरा परिणमन है, यह बात एक मोह रागकी रही, पर वहाँ भी जो मोह बना, राग बना वह तो आत्माकी परिणति है। पर शरीर कर्म हो या शरीरमें फोड़ाके रूपसे कुछ पुद्गल स्कंध उठ गए ये आत्मा की परिणतियाँ नहीं हैं। यद्यपि शिरमें वेदना होती है तो शिरको मलते हैं, शिरकी नसोंको दबाते हैं। ऐसा करते हैं तब भी वेदना शिरमें नहीं है, पीड़ाका अनुभव जानकारी अथवा उसरूप अनुभूति ये चेतनमें हो रहे हैं, फिर लोग शिरमें क्यों दबाते हैं? यों कि उस वेदनाका एक सहकारी कारण, एक आश्रयभूत कारण शिरकी नसोंकी परिणतियाँ हैं। तो निमित्त अथवा आश्रयभूत होनेसे यह दृष्टि जाती है पर शिरका काम शिरमें है और जो वेदना होती हैं उसका अनुभव आत्मामें है। आत्मा प्रथक् वस्तु है और वह मैं हूँ। मुझे आत्महित करना चाहिए ऐसी दृष्टि बनायें, शरीरको आत्मारूप अनुभव न करें।

मूलतत्त्व प्रतिषेधकके वस्तुस्वरूपकी अनुपलब्धि – मूलतत्त्वका प्रतिषेध करने वाले चारवाक सिद्धान्तमें यह कहा जा रहा है कि चैतन्य आत्मा जीव कुछ नहीं है। जो चैतन्य मालूम पड़ता है वह सब इस पृथ्वी, जल, अग्नि वायुके संयोगसे एक प्रभाव बना है। और उस प्रभावके साथ फिर उत्तरोत्तर जितनी चैतन्य वृत्तियाँ बनती हैं वे यद्यपि चैतन्य पूर्वक बन रही हैं, लेकिन सबसे पहिले जन्मते ही अथवा गर्भमें ही जब शुरूमें ज्ञान आया था चैतन्य आया था तो वह चैतन्य चैतन्यपूर्वक नहीं है किन्तु बिना चैतन्यके ही एक नवीन चैतन्य हुआ है। जैसे कि मुसाफिर लोग कभी इकट्ठे मिल जाते हैं तो कहते हैं कि भाई चिलम पी लो! तो वे चकमककी आपसमें लौ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लगाकर अग्नि पैदा करते हैं। अब देखो उस अग्निके बाद और अग्नि बनेगी यों अग्निकी संतान बनती चली जायगी मगर सबसे पहिले जो अग्नि बनी है वह तो बिना अग्निके बनती है ना ? पत्थर था वहाँ अग्नि पैदा हो गयी, ऐसे ही सबसे पहिल जो चैतन्य पैदा होता है वह सब जीवोंका होता है ऐसा उन्होंने कहा है किन्तु ऐसा मानने पर उनके ही चारों तत्त्व न रह पायेंगे। लो अग्नि बिना अग्निके पैदा हो गयी। पृथ्वी से उत्पन्न हो गयी तो अग्निका उपादान पृथ्वी रहा था फिर चारों कैसे ठहरेंगे। जब सबका उपादान एक बन जायगा तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये अलग अलग न रह सकेंगे यदि यह कहें कि अग्निका वह सहकारी था, पाषाण चकमक तो यह बात चैतन्यमें घटा लो। चैतन्य जो प्रकट होता है उसका सहकारी कारण शरीर है वह तो अपने चैतन्य आत्मासे ही संतान उत्पन्न होती रहती हैं। अथवा जैसे चकमकसे आग निकली है तो उसमें पत्थरमें भी यह मानें कि गर्भके समय जो चैतन्य जगा है उसको तिरोहितरूपसे पहिले भी था।

अपनी आत्मा की भांति सभी प्राणी दयाके योग्य—इसी प्रकार आत्मा है और अनादिकालसे चला आया है। अनन्तकाल तक बराबर रहेगा। अपने आपमें ऐसी श्रद्धा लावें। ये जितने पशु-पक्षी आदिक दुःखी रहती हैं यह सब चैतन्य ही तो इन शरीरोंको धारण करता चला जाता है कितने दुःखी प्राणी हैं जगतमें। किसीके दुखकी ओर दृष्टि दें तो हृदय कांप जाता है। सैकड़ों हजारोंकी तादातमें बैल गाय भेंड बकरी आदि कैसी निर्दयतासे मौतकी घाट उतार देते हैं, और अब तो खुले घर बन गए हैं उनकी हत्या करनेका। जिनपर बीतती है वे ही उस वेदनाको समझते हैं। निर्दयतासे मार पीटकर उस बधस्थानतक ले जाते हैं और उनकी निर्दयतासे उन्हें मौत की घाट उतार दिये जाते हैं। वे भी तो जीव हैं। जैसा स्वरूप अपना है वैसा ही स्वरूप अपना है। जब कभी ऐसी घटना देखकर दया आती है वह दया क्या चीज है। जैसा मेरा स्वरूप है वैसा ही उनका है जिनपर बीत रही हैं वे बातें। वे ही बातें मुझपर भी बीत सकती हैं।

अनुकम्पाका लक्षण तथा उसका प्रयोगात्मक रूप—स्वरूपकी समताके कारण जो ऐसी अन्तर्वृत्ति बनी है उसका अनुकम्पन है. दयाका दूसरा नाम है अनुकम्पा। अनुकम्पाका अर्थ है— अनु मायने अनुसार कम्पा मायने कप जाना। दूसरेपर जो वेदना हुई है उसे निरखकर उसके अनुसार अपनी वृत्ति बनाकर कप जाना उसका नाम है अनुकम्पा भी एक क्षोभ है इसी कारण प्रभुके गुणोंमें यह बताया है कि हे प्रभु न आपमें दया है और न आपमें अदया है। दयासे उल्टा जो हो वह भी नहीं है और दया भी नहीं है। शुद्ध शान्त निराकुल अवस्था है। छोटे छोटे प्रसङ्गोंमें भी जब दया उत्पन्न होती है तो दूसरे पुरुषोंकी भाँति अपने आपको सोचकर फिर वैसी वेदना यहाँ भी गुजर सकती है। ऐसी दृष्टिमें वृत्तिमें अंतःमें दयाका परिणाम पैदा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है। कोई भूखा पुरुष चिल्ला रहा है उसे देखकर दया किसे आयगी जो खुद कभी भूखा हो सकता है, हुआ था या जो भूखकी वेदना समझता है, जिसे भूखकी पीड़ाका अन्दाज है। चाहे वह इस समय खूब भरपेट बैठा हो, भूखा न हो, मगर जो भूखकी वेदना समझता है तो उसका स्मरण करके खुदमें एक कम्पन होता है, वेदना होती है उसे शान्त करनेके लिये फिर उसे भोजन देता है। अपने आपमें जो दर्द उठा दूसरेका दु:ख देखकर अपने आपके उस दर्दको मिटानेके लिए फिर दूसरेका उपकार किया जाता है।

परसे हटकर स्व-उपयोगको स्वमें नियत करने मात्रसे शान्तिकी उपलब्धि— सब जीव हैं और वे सद्भूत हैं, अनादिसे चले आये हैं, अनन्तकाल तक रहेंगे, हमारा घर इतना ही नहीं है, हमारी दुनिया इतनी ही नहीं है जितनी कि यहाँ कुछ मिला है या दिखता है। ऐसा ध्यानमें लायें। आपका स्थान नहीं है यह महल। जैसे चिड़ियां उड़ती जाति है और कभी पेड़पर बैठ जाती हैं। कुछ चिड़ियां तो किसी एक नियत वृक्षमें बसा करती हैं सबेरा होते ही वे पक्षी अपने अपने प्रयोजनसे उड़ जाते हैं। ऐसे ही एक घरमें कई प्राणियोंका जन्म हुआ हैं। रह रहे हैं लेकिन जब इस भव का अन्तकाल आयगा तो इन सबको छोड़कर जाना होगा। यहाँ प्राप्त हुए समागममें कुछ सार भी नहीं है। खूब निरख लो, दिलसे सोच लो। आत्मा है और मुझे इस निज आत्माको शान्त परिणतिमें रखना है क्योंकि ऐसा किए बिना कष्ट खुदको ही भोगना पड़ रहा है। तो शान्तिका उद्यम करना चाहिए वही है शान्ति मार्ग अथवा मोक्ष मार्ग। उसीका यह उपाय है कि हम अपने आपको शान्त स्वभाव वाला एक आत्मा मान लें जैसा कि वह है और फिर उस हीमें प्रयोग करें। बाहरमें प्रयोग न करें अपने आपमें अपने आपको लीन करनेका प्रयोग करें, जैसे समुद्रमें नमककी डली लीन हो जाती है इस ही प्रकार इस ज्ञान समुद्रमें नमककी डली लीन हो जाती है इस ही प्रकार इस ज्ञान समुद्रमें यह उपयोग मग्न हो जाय ऐसा उद्यम करें। संसारके सारे संकट दूर हो जायेंगे। कर्मोंकी गति कैसी है उसका ध्वंस किस प्रकार होता है, किस तरह कर्म दूर होते हैं यह सब कुछ जानमेंकी जरूरत नहीं। जान लें, जाननेमें आ जायें, समय हो, उपयोग अन्यत्र दौड़ता हो उसे सम्हालनेके लिये इसका भी ज्ञान करनेमें उपयोग लगावें लेकिन जो पुरुष अपने स्वरूपमें मग्न होनेका पुरुषार्थ कर लेता है उसे कहीं कुछ जाननेकी जरूरत नहीं है, उसके कर्म ध्वस्त होते जायेंगे।

वर्तमानकी तरह भूत भविष्यमें भी आत्माकी उपलब्धि नहीं मालूम है हमें मानलो संक्रमण किया, अपकर्षण किया, गुण श्रेणी निर्जरा किया। कैसे कैसे निषेध, कैसे कैसे खण्ड होकर नीची गति मिलती है इस बातका न भी पता हो केवल एक स्वरूप दर्शन, स्वरूप मग्नताका पुरूषार्थ बने तो कर्म बन्धन दूर हो जाताहै। पशु पक्षियोंने कर्मकाण्ड पढ़ा है क्या? कुछ शास्त्रचर्चा जानते हैं क्या? नहीं जानते,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किन्तु जिस भी पशुपक्षीको एक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है निज तत्त्वभावकी अनुभूति बनती है उस समय कैसे कर्म खिरते हैं वे सब व तें अपने आप हो जाती हैं। काम अपने आपको केवल एक यह है कि अपने स्वरूपका परिज्ञान करें और स्वरूपमें मग्न होनेका यत्न करें। यही आत्मशुद्धि है। यह युक्ति रखी गई है कि कोई आत्मा है अनुभव करने वाला, उसमें ही यह ज्ञान वृत्ति जगती है। अनादिकालसे कोई एक अनुभवन करने वाला आत्मा न हो तो इष्ट अथवा अनिष्ट विषयमें प्रत्यभिज्ञान और अभिलाषा आदिक जन्म के अन्तमें बन नहीं सकते। देखो बच्चेका जन्म हुआ जहाँ जन्मसे मतलब गर्भसे बाहर निकलना। वास्तवमें जन्म तो जब गर्भमें आया तब कहना चाहिए पर लोकरूढ़िमें जन्म कहा जाता है जब गर्भसे बाहर निकले' तो वहाँ जैसे जन्म हुआ था वैसे ही उसको वे सब संस्कार चूँकि बने थे आहार संज्ञा आदिकके सो माताका दुग्ध पीने लगता है। किसने उस बच्चेको पैदा होते ही दूध पीना सिखाया ? अरे उसके पूर्व भवके उस तरहके संस्कार हैं, अभिलाषा आदिक हैं प्रत्यभिज्ञान जगता रहता है। वे सब बातें यह सिद्ध करती हैं कि इस भवसे पहिले यह आत्मा था

पूर्वभवमें आत्मत्वकी सिद्धि—और देख लीजिए—कोई पुरुष बचपनमें ही बड़ा बुद्धिमान बनता है कोई जड़ बुद्धि वाला होता है। किसीको बहुत-बहुत सिखाया जाय फिर भी सीख नहीं पाता है। यह भेद सिद्ध करता है कि जिसका जैसा पूर्व जन्म था उसका संस्कार वहां आया है। कोई बचपनसे ही बड़ा विरक्त साधु जैसा स्वभाव कितना शान्त, विषयोंसे प्रयोजन नहीं, चित्त कल्याणके लिये चाहता है वह जीव पूर्वभवमें साधु होगा। तपश्चरण किया होगा, वे संस्कार चले आये और इस भवमें भी उसकी ऐसी विरक्त बुद्धि रहती है। यह प्रत्ययभिज्ञान अभिलाषा जो जन्म की आदिमें होती है वह पूर्वभवको सिद्ध करती है क्योंकि वे सब चेष्टायें अभ्यास पूर्वक हो रहे हैं। जो बालक माताके उदरमें ८-९ माह रहा आये उसने तो अभी यहाँके किसी विषयको देखा ही नहीं, जन्मके समयमें प्रथम ही प्रथम उन माँ-बापका अभ्यास कैसे बन जायगा। वह पहिले भी था आत्मा पहिले भी था आगे भी रहेगा और वही इस समय है। कोई शरीरके जुड़े मिलनेसे एक प्रभावमात्र ही चैतन्य होता हो ऐसा नहीं है। मध्यम अवस्थावोंमें अभ्यास जरूर देखा जा रहा है। इस समय अनेक बातें हमारे अभ्यासपूर्वक हो रही हैं। तो जब हम यह देख रहे हैं कि हमारी सारी चेष्टायें हमारे अभ्याससे हो रही हैं तो जन्मके आदि समयमें भी जो चेष्टायें हुई है वे भी अभ्यास पूर्वक ही हैं। उनके लिये पूर्व जन्मका अभ्यास है। प्रायः करके जो पुरुष जिस जातिका भाव रखता हैं। उस जातिके जैसे भोग उपभोग उसे भुगतने पड़ते हैं। एकबार किसीने प्रश्न किया जो ये मुर्गियां इतनी मारी जाती हैं और घटती नहीं है बल्कि और भी बढ़ती जाती हैं उसका कारण क्या है ? हमें तो लगता है कि उन के मारे जानेसे उनकी उपज और बढ़ रही है। तो इसका उत्तर यह दिया गया कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ तो मुर्गियां उत्पन्न हो रही थी और कुछ मारने वाले लोग भी मरकर मुर्गी बनते हैं तो इससे मुर्गियोंकी संख्या और बढ़ जाती है। और वह मुर्गीका मारने वाला अनेक भवोंमें मुर्गी बन बनकर दुःख सह रहा है। तो इसीसे मुर्गियोंकी संख्या और बढ़ रही है। तो इसमें दोष हुआ कि नहीं ? इसमें दोष हुआ। तो जिसे बार बार मुर्गी बनकर कष्ट सहन करना इष्ट है वह उनकी हिंसा करे और जिसे इष्ट नहीं है वह उनकी हिंसा न करे। तो ये सभी बातें आत्माके अस्तित्वको सिद्ध करती हैं।

पूर्वजन्मकृत संस्कार द्वारा चेष्टाओंकी उपलब्धि – सब काम अभ्यासपूर्वक हो रहे हैं शुरूसे ही जो चैतन्य चेष्टा होरही है वह भी। यदि जन्मके आदिमें होने वाली चैतन्य चेष्टावोंको बिना अभ्यासके मान लिया जाय, बिना चैतन्यके मान लिया जाय तो इस तरह जो बात जैसे अग्नि धुवां पूर्वक देखी जाती है तो वह भी कभी कभी बिना अग्निके भी दिख जाना चाहिए। दुदका हीका अभ्यास है जिसके कारण इस जन्मके आदि समयमें भी उस प्रकारकी चेष्टा देखी जाती है, सायद यह कहो कि माता पितावोंका अभ्यास है उस पूर्वक संतानमें भी चेष्टा हो जाती है। तुक तो कहीं न कहींसे मिलना चाहिए। उस एक जन्मके अभ्याससे नहीं हुआ किन्तु माता-पिताके अभ्यास पड़े हैं तो संतानमें भी बन गया। माता-पिता खाते रहते हैं ना सो वही अभ्यास संतानमें भी आ गया। यदि ऐसा मानोगे तो इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरेके अभ्याससे दूसरेका प्रत्यभिज्ञान बन गया। यों खाया, जाता यों पिया जाता, तो बहुत दोष आने लगेंगे। किसी ने कुछ देखा है किसी दूसरे आत्माका मरण होजाय या माताका एक अभ्यास खाने पीनेका एक जन्मजात बालकने ग्रहण कर लिया। तो जितना ज्ञान मातापिताका हुआ वह सबका सब क्यों नहीं आ गया। माता-पिताने जो कुछ जाना है उसे भी यह भी यह संतान इस रूपमें जानने लगे कि यह सब मैंने ही जाना है। तो माता-पिताके अभ्यासके कारण भी जन्मके आदि समयमें उस पुत्रको दुग्धपान आदिककी चेष्टा नहीं हुई है किन्तु उसे स्वयं आहारसंज्ञा थी। पूर्वजन्ममें थी उस ही संज्ञावासनासे वह यहां भी तुरन्त अपने योग्य आहार करने लगता है और देखिये ! आत्मा पहिले था या या नहीं ? इसकी चर्चा भी छोड़ दो और वर्तमानमें हम दुखी हैं कि नहीं, इससे तो कोई इंकार न करेगा चाहे वह सब शरीरका धर्म बना हो और चाहे कुछ हो इतना तो सुनिर्णीत है कि हम आप जिसमें अहं अहंका बोध हो रहा है, कोई ज्योति है, बिजली है, ज्ञान है, किन्हीं भी शब्दोंमें कह लो।

अज्ञानता ही बरबादीका हेतु अब हमको दुःख मिटाना है और शान्ति चाहना है यह भी लक्ष्य नौर अन्तः प्रयत्न सब जीवोंका चलता है। जैसे किसी चीजके निर्णयमें हम अनुभव युक्ति सभीको काममें लेते हैं तो जरा इस बातके निर्णयमें भी आये कि हमको दुखः है। दुःख हमें दूर करना है, शान्ति चाहिए है यह निर्णय कर डालें, प्रयोग कर करके अनुभव कर करके देखलें। जो कुछ भी जानने वाला हो यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जाननहार तत्त्व जब किसी परपदार्थक आशा रखता है उस आशामें इसे क्लेश होता है, यह बात सुनिर्णीत है कि नहीं। प्रयोगसे युक्तियोंसे देख लो। चूँकि वे परपदार्थ जिनकी आशा की जा रही है वे भिन्न हैं, उनका रहना न रहना उनके आधीन हैं अतएव जिस परपदार्थकी आशा की जाती है उस परपदार्थके लगावमें इस जीवको शान्ति नहीं हुई। जब कभी कल्पनासे मौज भी माना तो वह मौज भी क्लेश ही था। यह सब मोह मदिराका नशा था, उसे खुद नहीं समझ पाता. दूसरे लोग जो सचेत हैं वे जानते हैं। जैसे कोई पुरुष मदिर पी ले तो वह कैसा अद्‍भुत, अप्रिय वार्तालाप करने लगता है, अट्ट सट्ट वचन व्यवहार करता है। क्या वह पागल वह महापापी खुद का अनुभव कर पाता है कि मैं पागल हूँ, मुझे नशा चढ़ा है ? ऐसा मुझे न करना चाहिए ? वह तो नशेकी वजहसे अटपट चेष्टायें करता है। उसके परखने वाले दूसरे हैं जिन्होंने पद्यपान नहीं किया। वह ज्ञानसे सारी बातें यथार्थ जान रहा है। ऐसे ही जो पुरुष अज्ञानी है, मोहमें इन विषयोंसे सुख मानता है, वहाँ मौजकी अपनी चेष्टा बनाता है, उसका वह क्लेश भी भागता जाता है और वह यह नहीं मालूम कर पाता कि ये सब मेरी अज्ञानताकी बातें हैं, ये मुझे बरबाद करने वाली हैं। यह मेरा अज्ञान मुझे अपने स्वरूपमें मग्न नहीं होने देता, मुझे परमात्म प्रभुसे मिलन नहीं करने देता, ऐसी बातें उसे मालूम नहीं हैं।

परपदार्थोंसे हटकर ही स्वस्वरूपके आनन्दकी प्राप्ति - किसी भी पर पदार्थकी वह आशा करता है और फिर इसे दुःखी होना पड़ता है। और जब सब पर पदार्थोंको भिन्न जानकर, असार समझकर उनसे हटता है, अपने आपके स्वरूपमें मग्न होता है तब इसे अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। यह बात प्रयोग करके देख लीजिये ताकि भली भांति निर्णय हो जाय कि शान्तिका उपाय यह है। अपने आपके स्वरूप में मग्न होना यही एक करने योग्य पुरुषार्थ है। यह बात बन सकी तो सब बातें एक दम विदित हो जायेंगी कि मैं क्या हूँ। वास्तवमें हूँ या नहीं, आनन्द निधन हूँ स्वतंत्र हूँ, या शरीरके संयोगसे बन गया हूं ये सब समस्यायें हमारे इस आंतरिक प्रयोगसे हल हो जाती हैं।

विश्वविदित आत्माके अपलापकी असिद्धि - इस परिच्छेदमें ज्ञानका स्वरूप बताया जा रहा था और उस ज्ञानकी प्रमाणता कही जा रही थी जो ज्ञान स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये। प्रमाणके इस लक्षणमें विलोम पद्धतिसे एक एक शब्दका विचार किया गया और इस समय यह ज्ञान स्वका व्यवसाय करने वाला है इस विशेषणपर विचार किया जा रहा था जिसपर कुछ लोगोंने यह आपत्ति दी थी कि ज्ञान स्वका निर्णय नहीं रखता क्योंकि ज्ञान अचेतन है। प्रकृतिका धर्म है, पुरुषमें तो ज्ञानका सम्बन्ध होता है तब यह जानने वाला कहलाता है। उसका निराकरण करनेपर फिर ये भौतिकवादी अपना मंतव्य रख रहे हैं कि ज्ञान कोई स्वतंत्र

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत्त्व नहीं है फिर यह स्वव्यवसायी है, पर व्यवसायी है इस झगड़ेकी क्या जरूरत ? ज्ञान तो पृथ्वी आदिक भूत विकारोंसे उत्पन्न होता है। इस सम्बन्धमें बहुत बहुत विस्तारोंसे निराकरण हुआ। अब अन्तमें कुछ उपसंहारसा करते हुए और कुछ नवीन युक्तियाँ भी देते हुए इस प्रकरणको पूरा किया जा रहा है कि ज्ञान आत्माका धर्म है। भूत विकार नहीं है। लेकिन जो कुछ जाना करते हैं उसका यदि विवरण आ जाय तो शैली यह होती है कि मैं ज्ञानसे घटको जानता हूँ। ऐसी सभी पदार्थोंके जानने की बात लगा लें, मैं ज्ञानसे इस चौकी पुस्तक आदिकको जानता हूँ। इस प्रकारसे शैली बनती है जाननेकी तो इस शैलीमें जैसा मैं कहूँगा अहके द्वारा जिसका ज्ञान किया गया वह तो प्रसिद्ध है। अपने आपके ज्ञानमें अपने आपका वह आत्मा जिसके लिये मैं कहूँगा। मैं ज्ञानसे अमुक पदार्थोंको जानमा हूं वह मैं ही तो आत्मा है। मैं ज्ञानसे अमुक पदार्थको जानता हैं इस शैलीमें जैसा कि पदार्थका कर्मरूप अवभासन होता है अर्थात् पदार्थोंको जानता हूँ। जैसे यह बात हमारे ज्ञानमें स्पष्ट हो रही है इसी प्रकार मैं जानता हूँ यों मैंका भी ज्ञान स्पष्ट रहता है—पदार्थका प्रतिभास हुआ कर्मरूपसे और मैंका प्रतिभास हुआ कर्तारूप से। फिर ऐसे अत्यन्त प्रसिद्ध आत्माका अपलाप कैसे किया जा सकता है ? यहाँ जो कुछ भी हम जान सकते हैं, इस जाननेमें इसका कर्ता देह अथवा इन्द्रिय आदिक नहीं है क्योंकि जैसे घट आदिक पदार्थ कर्म-रूपसे प्रतिभासमें आते हैं, जैसे हम यों जाना करते हैं कि मैं ज्ञानसे कमण्डलको जान रहा हूँ इसी तरह यह भी तो ज्ञात किया करता है कि मैं ज्ञानसे शरीरको जान रहा हूँ, मैं ज्ञानसे नाक, हाथ आदिकको जान रहा हूँ। तो इस देह और इन्द्रियका भी तो कर्मरूपसे प्रतिभास हो रहा है। अतः यह देह इन्द्रिय ज्ञानके कर्ता नहीं है, वह तो स्वयं कर्म है, देह और इन्द्रिय इनका प्रतिभास न भी हो इसके भान बिना भी अहं प्रत्ययका अनुभवन होता है। आँखें मींच लें, कुछ भी निरखें फिर भी भीतरमें मैं मैं के द्वारा जो प्रतिभासमें आता है वह बराबर चल रहा है। इन इन्द्रियकी वृत्तियाँ थक जायेंगी पर अन्तरमें अहंकी वृत्ति नहीं थकती। चाहे उसे प्रयोगरूपसे बोलें या न बोलें अहंका भान जीवको सदैव रहता है किसी रूपसे रहे, अहंका भान न हो तो मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, इच्छावान हूँ ये सब बातें न बन सकेंगी।

देह इन्द्रियोंके ज्ञातृत्वकी अनुपलब्धि—देह और इन्द्रियका प्रतिभास न होनेपर जब मैं का ज्ञान चला करता है तो वही तो आत्मा है। बहुत बड़ा घना अंध-कार हो जिसमें यह सारा शरीर रंच भी नजर नहीं आता, ऐसी स्थितिमें और इन्द्रिय का व्यापार भी रुक गया, ऐसी स्थितिमें क्या किसीको यह नजर आता है कि यह शरीर गोरा है, मोटा है, पतला है, शरीरका कोई धर्म प्रतिभासमें नहीं होता लेकिन वहाँ भी अहंका प्रतिभास मैंका ज्ञान अपने आपको सम्विदित बराबर बना रहता है। तब देह इन्द्रिय विषय आदिकसे भिन्न आत्मतत्त्वके आधारमें रहने वाला ज्ञान है और उसका आश्रयभूत आत्मा है। यह बात बराबर प्रमाणसे प्रसिद्ध है उस आत्माका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपलाप नहीं किया जा सकता। देखिये ! आत्मतत्त्वके भान बिना यह जीवन निसार और पशुवोंसे भी बुरी जिन्दगी है अर्थात् वे पशु जो आत्मतत्त्वका भान कर रहे हैं उनसे तो बुरी जिन्दगी है ही।

आत्मज्ञानी पशुसे अज्ञानी नरकी हीनता जैसे आत्मभानके बिना अज्ञानी पशु हैं उसी प्रकार यह मनुष्य हुआ, कोई अन्तर नहीं। ये समागम ये आराम के मौज ये आवश्यक ठाठ ये समग्र असार विनाशीक और मायामय भिन्न वस्तुवें हैं। उससे आत्माको कुछ भी सिद्धि न मिलेगी। बहुत बहुत बार इन पदार्थोंमें बुद्धि लगाने पर भी आज यदि देखते हैं अपने आपको कि मेंने कितने बाहरी काम किया था, कितने मकान-दूकान बनवाया, कितना लोगोंसे व्यवहार बढ़ाया, किनना परिवारका अनुराग किया। बहुत बहुत तालन-पोषण उनकी उन्नति कितना श्रम किया, उस सब के फलमें आज मुझे कुछ लाभ नजर आ रहा है क्या ? अरे लाभकी तो बात छोड़ो उसके एवजमें आज दुःख ही और रीतापन ही नजर आ रहा है। ये पदार्थ रम्य नहीं हैं, आत्माका हित करने वाले नहीं हैं ये मोही जीव अपने आपके अज्ञानसे रागादिकके वश होकर किसीको इष्ट मान लेते किसीको अनिष्ट मान लेते। अपने आपपर कुछ दया करके सोचो तो भली भांति परिचय हो जायगा कि किन्हीं भी बाह्य पदार्थोंसे मेरे आत्माका हित नहीं है। कषाय ही तो जीवको दुःखके कारण बनी हुई हैं। कषाय न हों तो आत्मा तो स्वभावत: स्वयं आनन्दका धाम है। उस आनन्दको प्रकट करनेके लिये लालचकी जरूरत नहीं है। माया मान, क्रोधकी जरूरत नहीं है। इनके त्यागने की आवश्यकता है। देखिये बाह्य पदार्थोंमें कुछ आशा लगाये, कुछ उनका संचय बनाये तो उससे तृप्ति नहीं होती बल्कि तृष्णा बढ़ती ही रहती है।

तत्त्वज्ञानसे कल्याणकी संभवता तत्त्वज्ञान जगे तो आत्माका कल्याण है। ये सब बातें तभी तो बन सकेंगी जब पहिले मूलभूत अपने आत्माका अस्तित्व परखलें कि मैं क्या हूँ। मैं एक अनादि अनन्त आत्मा हूँ योंकि द्रव्य हूँ। जैसे पृथ्वी आदिक पदार्थ ये भी कोई पदार्थ नहीं हैं तो ये भी अनादि अनन्त है। किसी भी अणु की आदि नहीं है। किसी भी अणुका विनाश नहीं है। मैं अनादि अनन्त आत्मा हूँ यह बात अहं प्रत्ययसे सिद्ध है मैं हूँ। मैं का यथार्थ स्वरूप जाने बिना मैं मैं करनेसे तो विनाश है और मैं का यथार्थ स्वरूप जानकर वे उस मैं मैं मैं को उतार लेनेसे आत्माका कल्याण है। यह आत्मा एक द्रव्य हैं, क्योंकि गुण पर्याय इसमें भी पाये जाते हैं। जो गुण पर्यायका आश्रय है यही तो द्रव्य कहलाता जो सदा रहता है। पर्याय वह कहलाता जो उन गुणोंकी परिणति तो है पर जिस समय जो परिणति है वह उस समय है,उससे पहिले नहीं है, उसके बाद नहीं है। अपने आपमें विचार करिये यह मैं आत्मा हूँ और इसमें अनेक गुण हैं। जहाँ तक भली भांति निरख सकते हैं वहाँ तक दृष्टि ले जायें। मुझ आत्मामें ज्ञान गुण है या नहीं। अर्थात् आत्मामें जाननेकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्ति है आत्मामें किसी न किसी पदार्थमें रमनेकी शक्ति है ना। कहीं न कहीं यह आत्मा लगा रहता है।

गुण पर्यायका आधार भूत द्रव्य जब मोह राग उत्पन्न होता है तो यह बाह्य पदार्थोंमें लगा रहता है जब मोह और रागकी शिथिलता होती है तो यह अपने स्वरूपमें लगता है। यह कहीं न कहीं लगा रहे ऐसा गुण आत्मामें है कि नहीं ? इसी का नाम है चरित्रगुण। यह आत्मा किसी भी ओर हितरूप विश्वास बनाये रहे यह भी आत्तामें एक कला पायी जाती है। कोई किसी पदार्थमें हितका विश्वास बनाये है कोई किसीमें। जो पुरुष आत्म स्वरूपके अनुभवनमें ही हितका विश्वास बनाये है उन के कहलाता है सम्यग्दर्शन, और जो पुरुष बाह्य पदार्थोंमें उनसे मेरा हित होगा ऐसा हितका विश्वास बनाये है उनके कहलाता है मिथ्यादर्शन। आत्मामें एक ऐसी भी कला है कि किसी ओर हितमें विश्वास बनाये रहे। इस हीका नाम है श्रद्धान गुण। आत्मामें एक आनन्द शक्ति भी है। उसका इस संसार अवस्थामें विकार परिणमन हो रहा है अतएव ये प्राणी सुख अथवा दुःखका अनुभवन किया करते हैं। और जब यह उपयोग अपने आधारमें लीन हो जाता है तो उसे सुख-दुःखका बोध न होकर विशुद्ध आनन्दका अनुभव होता है पर आनन्द पानेकी शक्ति आत्मामें है। यही हुआ आनन्द गुण। ऐसे ऐसे आत्मामें अनेक गुणोंकी प्रति समयमें कोई न कोई अवस्था रहा करती है। उस अवस्थाका नाम है पर्याय, परिणति। यों गुण और पर्यायोंका आधारभूत यह आत्म द्रव्य है। जो गुण और पर्यायोंका आधार होता है उसे द्रव्य कहते हैं यहाँ इस सिद्धान्तका विघटन किसी भी स्थलमें नहीं होता। जो यह मालूम पड़ रहा है कि ये चौकी दरी आदिक पदार्थ हैं। इनमें और पर्याय क्या होगी तो ये द्रव्य नहीं रहे। हाँ हाँ कोई दोषकी बात नहीं है यह द्रव्य नहीं है। यह स्वयं पर्याय है। जो मूलभूत पदार्थ है उसमें गुण पर्यायवत्ताकी बात दिखती है। आत्मा ज्ञान शक्ति वाला है, जो नाना प्रकारके जाननोंकी परिणति बनाये रहता है। यों गुण और पर्यायवान है अतएव आत्मा द्रव्य है, वास्तविक पदार्थ है, इस प्रसङ्गमें चारुवाक अब यह समस्या रख रहे हैं कि भाई शरीरसे जुदा कभी आत्माका प्रतिभास हुआ हो तब तो यह कहना ठीक है कि शरीरसे न्यारा अनादि अनन्त कोई आत्मा हुआ करता है। देखिये इस खण्डन-मण्डनके प्रकरणमें करीब करीब साधारण जनोंके लिये मण्डनकी बात एक भौतिकवादकी बात तो जल्दी घर कर जाती है।

हितकी सूझमें एकमात्र मोह ही बाधक—ये चारुवाक ठीक ही तो कह रहे हैं, क्योंकि खण्डन की युक्तियोंमें अपना चित्त अथवा दिमाग बहुत अन्तरमें लेजाना पड़ता है, उसमें होता है मोहीजनोंको परिश्रम, अतएव आत्माके अस्तित्वकी युक्तियां चित्तमें जल्दी घर नहीं कर पाती हैं, नास्तिकताके प्रसंग चित्तमें जल्दी घर कर जाते हैं, चारुवाक यह समस्या रख रहा है कि भाई आत्माकी बात तुम तब गावो जब शरीरसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

न्यारा आत्मा कभी भी तो किसी दृष्टान्तमें कभी देखा हो, प्रतिभासमें आया हो, जैसे जलसे न्यारी आग हमारे प्रतिभासमें आती है तो हम यह कह सकते हैं कि आग जलसे न्यारी वस्तु है, यों शरीरसे न्यारा आत्मा कुछ प्रतिभासमें आये तो हम यह कहें कि आत्मा कोई वास्तविक पदार्थ है पर आया कहाँसे ? अरे सदैव यह शरीर सतत् ही लग रहा, है इसके समाधानमें आचार्यदेव उत्तर देते हैं,जो चारुवाक जनोंने यह कहा कि शरीर रहित आत्माका प्रतिभास नहीं हो रहा तो वहाँ शरीर रहित इस शब्दका अर्थ-क्या लगाया ? क्या यह अर्थ लगावेंगे कि शरीरके स्वभावसे रहित आत्मा अथवा शरीरके क्षेत्रसे बाहर कहीं आत्मा नहीं दीखा। शरीररहित का मंतव्य क्या है ? यदि कहोगे कि शरीरके स्वभावसे जुदा आत्माका प्रतिभास नहीं हुआ तो यह बात तो यों गलत है कि जिन जिनको भी इस समय भी आत्माका प्रतिभास हो रहा है या अह मैं मैं करके जिसका अनुभवन हो रहा है वह शरीरके स्वभावसे न्यारा ही अनुभवन हो रहा है। शरीरमें तो हम यों कहते—मोटा है, दुबला है, शरीरके लिए यों कहते कि सुखी हूँ दुःखी हूं। तो शरीरका स्वभाव और कुछ है और आत्माका स्वभाव अन्य कुछ है। तो शरीरके स्वभावसे न्यारा आत्मा नजर आ ही रहा है।

अहं प्रत्यय द्वारा आत्मत्व का प्रत्यक्ष—यह शरीर तो रूप आदिक वाला है, इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श पाये जाते हैं, अचेतन है। यह स्वयं कुछ जानता नहीं है, उससे विलक्षण यह आत्मा है, आत्मा रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित है और चैतन्यस्व-भाव वाला है। तो शरीर रहित है ना यह अर्थात् शरीरके स्वभावको न ग्रहण करके मात्र अपने ही स्वभावको लिए हुए है यह और ऐसा ही भीतरमें मैं मैंके द्वारा अनुभव भी होता , प्रत्यक्षके विषयमें भी आता है। तो शरीर रहितका अर्थ यह करेंगे कि शरीर जितना आकाशकी जगहमें है उससे बाहर हमें आत्मा नजर नहीं आया। तो यह तो बतलावो कि इसका क्या यह मतलब है कि शरीरके प्रदेशोंसे बाहर आत्मा नहीं प्रतिभासमें आया इसलिए आत्माका अभाव है या शरीरके प्रदेशोंमें ही जितने क्षेत्रमें, जितने आकाशमें यह शरीर बना हुआ है इसमें ही आत्माका अभाव है यह तुम्हारा मतलब है, यदि यह कहो कि शरीरके क्षेत्रसे बाहर आत्माका अभाव है तो वह बात सही है, शरीरके क्षेत्रसे बाहर आत्मा नहीं है। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता कि क्या लोग ऐसा भी मानते कि शरीरके क्षेत्रसे भी बाहर आत्मा है ? हाँ हैं मानने वाले। नैयायिक जन आत्माको सर्वव्यापक मानते हैं शरीरमें भी आत्मा है और वही आत्मा शरीरसे बाहर भी है, पर इस समय हमारा आत्मा हमारे शरीरसे बाहर नहीं है। आपका भी आत्मा आपके शरीरसे बाहर नहीं है, यह बात तो सही है पर यह नहीं कह सकते कि शरीरके प्रदेशोंसे भी आत्माका अभाव है, क्योंकि अपने प्रदेशोंसे बाहर ये घट आदिक भीनहीं तो घट आदिकका भी तो अभाव हो गया।

शरीरस्थ आत्माकी देहस्थभावसे भिन्नता—शरीरमें है और शरीरके

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वभावसे न्यारा है। जैसे दूध और पानी मिला हुआ हो एक गिलासमें तो हम पूछें कि इसमें पानीका अभाव है या नहीं, पानीका सद्भाव है या नहीं ? तो कोई कहे कि भाई, पानीका सद्भाव नहीं है क्योंकि उस गिलाससे बाहर पानी नजर ही नहीं आ रहा। यह बात तो ठीक है, नहीं नजर आ रहा, पानीसे बाहर गिलास है। पानी दूध के स्वभावसे न्यारा है, ऐसे ही शरीरसे बाहर आत्मा है, है शरीरमें ही पर शरीरके स्वभावसे न्यारा है इस आत्माका स्वभाव। और भी सुनिये ! अपने आत्माका अभाव अर्थात् शरीरसे भिन्न आत्मा कुछ नहीं है, ऐसा जो तुम कहना चाहते क्या इसलिए कह रहे हो कि शरीरका स्वभाव है यह ज्ञान या शरीरका गुण है यह ज्ञान या शरीरका कार्य है यह ज्ञान ! इन तीन पक्षोंका उत्तर पहिले खूब विस्तारसे दिया जा चुका है। ज्ञान शरीरका स्वभाव नहीं है, ज्ञान शरीरका गुण भी नहीं और ज्ञान शरीरका कार्य भी नहीं, क्योंकि ज्ञानका शरीर न तो उपादान कारण है और किसी किसी प्रसङ्गमें निमित्त कारण मान लो तो उससे यह तो सिद्ध हो गया कि उपादान कुछ और है। वही तो आत्मा है।

चैतन्यस्वभावी आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि-- चैतन्यस्वभावात्मक आत्मा की सिद्धि बराबर प्रमाणसे है, इस कारण आत्माको ज्ञानस्वभावी मानना ही चाहिए ज्ञान आत्माका ही स्वभाव है और ज्ञान व्यवसायात्मक है। हम किसी पदार्थको जानते हैं जैसे कि यह दरी है इस ज्ञानमें दो बातें आ गयीं- यह दरी है यह बात बिल्कुल ठीक है और में यह जान रहा हूं कि यह दरी है, यह मेरा ज्ञान बिल्कुल ठीक है। कोई दरीको तो सही बतावे-यह दरी ही है और संशय रखे कि मैंने जो जाना कि यह दरी है यह मेरा ज्ञान सही है या नहीं ये दो बातें एक साथ नहीं बन सकती। यदि अपने इस ज्ञानमें सन्देह हो, क्या है। तो दरीका भी निर्णय नहीं बनता। जो ज्ञान स्वव्यवसायी है वही ज्ञान परव्यवसायी बनता है। स्वका निर्णय करने वाला ज्ञान है, क्योंकि ज्ञान चैतन्यात्मक परिणमन है। ो स्व व्यवसायात्मक नहीं होता वह चैतन्यात्मक नहीं होता इसमें यह माना कि ज्ञान है और वह स्व और पर पदार्थों का निर्णय रखने वाला है ऐसा ही ज्ञान प्रमाण होता है। इस ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूपकी सिद्धि प्रथम ही प्रथम यों की कि यह दार्शनिक ग्रन्थ है और इसमें वस्तु तत्त्वका निर्णय किया जायगा। तो निर्णय तो प्रमाणसे होता है। तो पहिले प्रमाणके स्वरूप को ही ठीक करलें तब फिर निर्णयकी बात चलेगी। यों इस सूत्रमें ज्ञानको स्व व्यवसायात्मक सिद्ध किया है और वह ज्ञान मैं हूँ जो अपनेको जानता और परको भी जानता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com